"અહો ! શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર ૨૧૯

ન્યાયગ્રંથ

વાદાર્થ સંગ્રહ ભાગ-૧

: દ્રવ્ય સહાયક :

સુવિશાળ ગચ્છાધિપતિ પૂ. આ. શ્રી વિજય રામચંદ્ર-ભદ્રંકર-
કુંદકુંદસૂરીશ્વરજી મહારાજના શિષ્યરત્ન
વર્ધમાનતપોનિધિ પૂ. ગણિવર્ય શ્રી નયભદ્રવિજયજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી
શ્રી કાવી તીર્થે ચૈત્રી ઓળી પ્રસંગે
જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૫
(મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૭૨ ઈ. ૨૦૧૬

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६५ (ई. 2009) सेट नं.-१

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजी म.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणि चूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्गीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणि म.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणि सारसटीकः	पू. भद्रबाहुस्वामी म.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणि म.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजी म.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलाल सोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम् भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	322
010	शिल्परत्नम् भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारती गोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ ચુનીલાલ સોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रन्स	502
020	હીરકલશ જૈન જ્યોતિષ	શ્રી હિમ્મતરામ મહાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी. ध्रुव	226
022	दीपार्णव पूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-१	पू. मुनिचंद्रसूरिजी म.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्ट, बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री	214
028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तु प्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192

030	**शिल्परत्नाकर**	**श्री नर्मदाशंकर शास्त्री**	**824**
031	**प्रासाद मंडन**	**पं. भगवानदास जैन**	**288**
032	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-१**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**520**
033	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-२**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**578**
034	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-३ (१)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**278**
035	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-3 (२) (३)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**252**
036	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-५**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**324**
037	વાસ્તુનિઘંટુ	પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૨	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૩	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પૂ. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભઙ્ગીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભઙ્ગીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	274
050	ન્યાયસમુચ્ચય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પૂ. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મહોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

સંયોજક – બાબુલાલ સરેમલ શાહ

શાહ વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન

હીરાજૈન સોસાયટી, રામનગર, સાબરમતી, અમદાવાદ-૦૫.

(મો.) ૯૪૨૬૫૮૫૯૦૪ (ઓ) ૨૨૧૩૨૫૪૩ (ઇ-મેલ) ahoshrut.bs@gmail.com

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦) – સેટ નં-૨

પ્રાયઃ જીર્ણ અપ્રાપ્ય પુસ્તકોને સ્કેન કરાવીને ડી.વી.ડી. બનાવી તેની યાદી.

આ પુસ્તકો www.ahoshrut.org વેબસાઇટ પરથી પણ ડાઉનલોડ કરી શકાશે.

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजी म.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पत्तिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/ગુ.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	पू. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	पू. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	पू. हेमसागरसूरिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं/ગુ.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376

075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	**374**
076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	**238**
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	**श्री विद्या साराभाई नवाब**	**194**
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	**192**
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री मनसुखलाल भुदरमल**	**254**
080	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	**260**
081	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	**238**
082	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૩	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	**260**
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	**पू. कान्तिसागरजी**	**114**
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	**श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री**	**910**
085	**विश्वलोचन कोश**	**सं./हिं**	**श्री नंदलाल शर्मा**	**436**
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	**336**
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	**230**
088	હસ્તસઞ્જીવનમ્	સં.	**पू. मेघविजयजीगणि**	**322**
089	એન્દ્રચતુર્વિંશતિકા	સં.	**पू.यशोविजयजी, पू. पुण्यविजयजी**	**114**
090	સમ્મતિ તર્ક મહાર્ણવાવતારિકા	સં.	**आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी**	**560**

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इन्स्टीट्युट बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं,	आगमोद्धारक सभा	250
106	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार – न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354
109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिविजयजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
122	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-१	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
123	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-४	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
124	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-५	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
125	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत इन्स्क्रीप्शन्स	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल डिपा.	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६८ (ई. 2012) सेट नं.-४

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	भाषा	प्रकाशक	पृष्ठ
127	महाप्रभाविक नवस्मरण	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	754
128	जैन चित्र कल्पलता	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	84
129	जैन धर्मनो प्राचीन इतिहास भाग-२	हीरालाल हंसराज	गुज.	हीरालाल हंसराज	194
130	ओपरेशन इन सर्च ओफ सं. मेन्यु. भाग-६	पी. पीटरसन	अंग्रेजी	एशियाटीक सोसायटी	171
131	जैन गणित विचार	कुंवरजी आणंदजी	गुज.	जैन धर्म प्रसारक सभा	90
132	दैवज्ञ कामधेनु (प्राचिन ज्योतिष ग्रंथ)	शील खंड	सं.	ब्रज. बी. दास बनारस	310
133	करण प्रकाशः	ब्रह्मदेव	सं./अं.	सुधाकर द्विवेदि	276
134	न्यायविशारद महो. यशोविजयजी स्वहस्तलिखित कृति संग्रह	यशोदेवसूरिजी	गुज.	यशोभारती प्रकाशन	69
135	भौगोलिक कोश-१	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	100
136	भौगोलिक कोश-२	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	136
137	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	266
138	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	244
139	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	274
140	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	168
141	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	282
142	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	182
143	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-१	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	384
144	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-२	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	376
145	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-३	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	387
146	भाषवति	शतानंद मारछता	सं./हि	एच.बी. गुप्ता एन्ड सन्स बनारस	174
147	जैन सिद्धांत कौमुदी (अर्धमागधी व्याकरण)	रत्नचंद्र स्वामी	प्रा./सं.	भैरोदान सेठीया	320
148	मंत्रराज गुणकल्प महोदधि	जयदयाल शर्मा	हिन्दी	जयदयाल शर्मा	286
149	फक्कीका रत्नमंजूषा-१, २	कनकलाल ठाकूर	सं.	हरिकृष्ण निबंध	272
150	अनुभूत सिद्ध विशायंत्र (छ कल्प संग्रह)	मेघविजयजी	सं./गुज	महावीर ग्रंथमाळा	142
151	सारावलि	कल्याण वर्धन	सं.	पांडुरंग जीवाजी	260
152	ज्योतिष सिद्धांत संग्रह	विश्वेश्वरप्रसाद द्विवेदी	सं.	ब्रीजभूषणदास बनारस	232
153	ज्ञान प्रदीपिका तथा सामुद्रिक शास्त्रम्	रामव्यास पान्डेय	सं.	जैन सिद्धांत भवन	160
	नूतन संकलन				
१	आ. चंद्रसागरसूरिजी ज्ञानभंडार – उज्जैन	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	
२	श्री गुजराती श्वे.मू. जैन संघ-हस्तप्रत भंडार – कलकत्ता	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६९ (ई. 2013) सेट नं.-५

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। ***यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।***

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
154	उणादि सूत्रो ओफ हेमचंद्राचार्य	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	जोहन क्रिष्टे	304
155	उणादि गण विवृत्ति	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	पू. मनोहरविजयजी	122
156	प्राकृत प्रकाश-सटीक	भामाह	व्याकरण	प्राकृत	जय कृष्णदास गुप्ता	208
157	द्रव्य परिक्षा और धातु उत्पत्ति	ठक्कर फेरू	धातु	संस्कृत /हिन्दी	भंवरलाल नाहटा	70
158	आरम्भसिध्धि – सटीक	पू. उदयप्रभदेवसूरिजी	ज्योतीष	संस्कृत	पू. जितेन्द्रविजयजी	310
159	खंडहरो का वैभव	पू. कान्तीसागरजी	शील्प	हिन्दी	भारतीय ज्ञानपीठ	462
160	बालभारत	पू. अमरचंद्रसूरिजी	काव्य	संस्कृत	पं. शीवदत्त	512
161	गिरनार माहात्म्य	दौलतचंद परषोत्तमदास	तीर्थ	संस्कृत /गुजराती	जैन पत्र	264
162	गिरनार गल्प	पू. ललितविजयजी	तीर्थ	संस्कृत/गुजराती	हंसकविजय फ्री लायब्रेरी	144
163	प्रश्नोत्तर सार्ध शतक	पू. क्षमाकल्याणविजयजी	प्रकरण	हिन्दी	साध्वीजी विचक्षणाश्रीजी	256
164	भारतिय संपादन शास्त्र	मूलराज जैन	साहित्य	हिन्दी	जैन विद्याभवन, लाहोर	75
165	विभक्त्यर्थ निर्णय	गिरिधर झा	न्याय	संस्कृत	चौखम्बा प्रकाशन	488
166	व्योम वती-१	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत युनिवर्सिटी	226
167	व्योम वती-२	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत विद्यालय	365
168	जैन न्यायखंड खाद्यम्	उपा. यशोविजयजी	न्याय	संस्कृत /हिन्दी	बद्रीनाथ शुक्ल	190
169	हरितकाव्यादि निघंटू	भाव मिश्र	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	शीव शर्मा	480
170	योग चिंतामणि-सटीक	पू. हर्षकीर्तिसूरिजी	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	लक्ष्मी वेंकटेश प्रेस	352
171	वसंतराज शकुनम्	पू. भानुचन्द्र गणि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	खेमराज कृष्णदास	596
172	महाविद्या विडंबना	पू. भुवनसुन्दरसूरि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	सेन्ट्रल लायब्रेरी	250
173	ज्योतिर्निबन्ध	शिवराज	ज्योतिष	संस्कृत	आनंद आश्रम	391
174	मेघमाला विचार	पू. विजयप्रभसूरिजी	ज्योतिष	संस्कृत/गुजराती	मेघजी हीरजी	114
175	मुहूर्त चिंतामणि-सटीक	रामकृत प्रमिताक्षय टीका	ज्योतिष	संस्कृत	अनूप मिश्र	238
176	मानसोल्लास सटीक-१	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	166
177	मानसोल्लास सटीक-२	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	368
178	ज्योतिष सार प्राकृत	भगवानदास जैन	ज्योतिष	प्राकृत/हिन्दी	भगवानदास जैन	88
179	मुहूर्त संग्रह	अंबालाल शर्मा	ज्योतिष	गुजराती	शास्त्री जगन्नाथ परशुराम द्विवेदी	356
180	हिन्दु एस्ट्रोलोजी	पिताम्बरदास त्रीभोवनदास	ज्योतिष	गुजराती	पिताम्बरदास टी. महेता	168

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७१ (ई. 2015) सेट नं.-६

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।

यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
181	काव्यप्रकाश भाग-१	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	364
182	काव्यप्रकाश भाग-२	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	222
183	काव्यप्रकाश उल्लास-२ अने ३	उपा. यशोविजयजी		संस्कृत	यशोभारति जैन प्रकाशन समिति	330
184	नृत्यरत्न कोश भाग-१	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	156
185	नृत्यरत्न कोश भाग-२	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	248
186	नृत्याध्याय	श्री अशोकमलजी		संस्कृत /हिन्दी	श्री वाचस्पति गैरोभा	504
187	संगीरत्नाकर भाग-१ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	448
188	संगीरत्नाकर भाग-२ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	444
189	संगीरत्नाकर भाग-३ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	616
190	संगीरत्नाकर भाग-४ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	632
191	संगीत मकरन्द	नारद		संस्कृत	श्री मंगेश रामकृष्ण तेलंग	84
192	संगीत नृत्य अने नाट्य संबंधी जैन ग्रंथो	श्री हीरालाल कापडीया		गुजराती	मुक्ति-कमल-जैन मोहन ग्रंथमाला	244
193	न्यायबिंदु सटीक	पूज्य धर्मोतराचार्य		संस्कृत	श्री चंद्रशेखर शास्त्री	220
194	शीघ्रबोध भाग-१ थी ५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	422
195	शीघ्रबोध भाग-६ थी १०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	304
196	शीघ्रबोध भाग-११ थी १५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	446
197	शीघ्रबोध भाग-१६ थी २०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	414
198	शीघ्रबोध भाग-२१ थी २५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	409
199	अध्यात्मसार सटीक	पूज्य गंभीरविजयजी		संस्कृत/गुजराती	नरोत्तमदास भानजी	476
200	छन्दोनुशासन	एच. डी. वेलनकर		संस्कृत	सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ	444
201	मग्गानुसारिया	श्री डी. एस शाह		संस्कृत/गुजराती	ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ट्रस्ट	146

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७२ (ई. 201६) सेट नं.-७

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
202	आचारांग सूत्र भाग-१ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	285
203	आचारांग सूत्र भाग-२ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	280
204	आचारांग सूत्र भाग-३ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	315
205	आचारांग सूत्र भाग-४ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	307
206	आचारांग सूत्र भाग-५ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	361
207	सुयगडांग सूत्र भाग-१ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	301
208	सुयगडांग सूत्र भाग-२ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	263
209	सुयगडांग सूत्र भाग-३ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	395
210	सुयगडांग सूत्र भाग-४ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	386
211	सुयगडांग सूत्र भाग-५ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	351
212	रायपसेणिय सूत्र	श्री मलयगिरि	गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	260
213	प्राचीन तीर्थमाळा भाग-१	आ.श्री धर्मसूरि	सं./गुजराती	श्री यशोविजयजी ग्रंथमाळा	272
214	धातु पारायणम्	श्री हेमचंद्राचार्य	संस्कृत	आ. श्री मुनिचंद्रसूरि	530
215	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-१	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	648
216	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-२	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	510
217	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-३	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	560
218	तार्किक रक्षा सार संग्रह	आ. श्री वरदराज	संस्कृत	राजकीय संस्कृत पुस्तकालय	427
219	वादार्थ संग्रह भाग-१ (स्फोट तत्त्व निरूपण, स्फोट चन्द्रिका, प्रतिपादिक संज्ञावाद, वाक्यवाद, वाक्यदीपिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	88
220	वादार्थ संग्रह भाग-२ (षट्कारक विवेचन, कारक वादार्थ, समासवादार्थ, वकारवादार्थ)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	78
221	वादार्थ संग्रह भाग-३ (वादसुधाकर, लघुविभक्त्यर्थ निर्णय, शाब्दबोधप्रकाशिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	112
222	वादार्थ संग्रह भाग-४ (आख्यात शक्तिवाद छः टीका)	रघुनाथ शिरोमणि	संस्कृत	महादेव शर्मा	228

वादार्थसंग्रहः ।

(प्रथमो भागः)

स्फोटतत्त्वनिरूपण–स्फोटचन्द्रिका–प्रातिपदिक-
संज्ञावाद–वाक्यवाद–वाक्यदीपिकेति-
ग्रन्थपञ्चकात्मकः

VADARTHA SAMGRAHA

CONTAINING

SPHOTA-TATWA-NIRUPANA, SPHOTA-CHANDRIKA, PRATIPADIKA-SAMDNYA-VADA, VAKYA-VADA, AND VAKYA-DEEPIKA

FIRST PART

EDITED BY

MAHADEVA SHARMA GANGADHAR BHATTA BAKRE

Printed and Published by Manilal Itcharam Desai at

THE GUJARATI PRINTING PRESS

SASSOON BUILDINGS, CIRCLE, FORT,

BOMBAY

Price Six Annas.

A. D. 1913
SAMVAT 1969

COPY RIGHT.

वादार्थसंग्रहः ।

स्फोटतत्त्वनिरूपण-स्फोटचन्द्रिका-प्रातिपदिक-
संज्ञावाद-वाक्यवाद-वाक्यदीपिकेति-
ग्रन्थपञ्चकात्मकः

(प्रथमो भागः)

बाक्रे इत्युपाह्वगङ्गाधरभट्टसुतमहादेवशर्मणा
संस्कृतः

' गुजराती ' मुद्रणालयाधिपतिना स्वीये मुद्रणालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

विक्रमसंवत् १९६९ खिस्ताब्दः १९१३

मूल्यं षडाणकाः ।

विज्ञापनम् ।

श्रीमद्गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः ।

यः शास्त्रप्रसिद्धं यं कंचिदेकमर्थमुपादाय तद्विचारपरो ग्रन्थः प्रवर्तते स वादार्थपदाभिधेयः । प्रयोजनं चैतादृशग्रन्थप्रणयनस्य आकरेषु महानिबन्धेषु वा इतस्ततः प्रकीर्णस्य तदभिसंबन्धवतो विषयजातस्यैकत्र संकलनं, सूचितस्य व्यक्तीकरणम्, अप्रपञ्चितस्य स्वरूपवैशद्याय प्रपञ्चनं, विमतस्य च वैमत्यहेतून्निराकृत्य व्यवस्थापनं वा । तच्च कचित्समस्तं कचिद्व्यस्तं यथासंभवं वा द्रष्टव्यम् । तेनाकरेऽकृतपरिश्रमाणामेतदध्ययनमनल्पमुपकरिष्यतीत्यविवादम् । आकरपरिशीलिनामप्यस्यांशत उपकारो भविष्यत्येव प्रकीर्णस्यैकत्र लाभात् । अतो वादार्थमुद्रणे मया प्रोत्साहितो गुजरातीमुद्रणालयाधिपतिः कतिचित्पुस्तकानि समाहृत्य तच्छोधने मामेव न्ययुङ्क्त । ततोऽहं स्फोटतत्त्वनिरूपणं स्फोटचन्द्रिका प्रातिपदिकसंज्ञावादः वाक्यवादश्चेति वैयाकरणसिद्धान्तानुसारिणश्चतुरो वादार्थान् यथामति पर्यशोधयम् । तत्र स्फोटतत्त्वनिरूपणस्य कर्ता भट्टोजिदीक्षितानां गुरुः काशीनिवासी शेषोपनामा कृष्णपण्डितः । एतत्कृतं प्रक्रियाकौमुदीप्रकाशः कंसवधनाटकं चेति ग्रन्थद्वयमपि प्रसिद्धम् । स्फोटचन्द्रिकाकर्ता काशीस्थ एव मौनिकुलावतंसगोवर्धनपण्डितस्य तर्कभाषाटीकाया न्यायबोधिन्याश्च प्रणेतुर्नप्ता । अनेनापि शब्दार्थतर्कामृतं लघुविभक्त्यर्थनिर्णयश्चेति ग्रन्थद्वयं प्रणीतमिति ज्ञायते । तत्र लघुविभक्त्यर्थनिर्णयोऽस्माभिरुपलब्धः । शब्दार्थतर्कामृतं तु अस्मिन्नेव पुस्तके स्फोटचन्द्रिकायाः षष्ठे पत्रे नवम्यां पङ्क्तौ ग्रन्थकृता स्वकृतत्वेन निर्दिष्टम् । तच्च नोपलब्धम् । प्रातिपदिकसंज्ञावादस्य

कर्ता गोडबोलेउपनामको नारायणपण्डितः । एतत्प्रणीतं ग्रन्थान्तरं न श्रूयते । अस्मदुपलब्धं प्रातिपदिकसंज्ञावादपुस्तकं विक्रमसंवत् १८८८ वत्सरे लिखितमिति ततः प्राचीनोऽयमिति ज्ञायते । वाक्यवादस्य कर्ता क इति न ज्ञायते । पुस्तकस्यातिजीर्णत्वात् प्राचीनः कश्चित् पण्डित इत्यनुमीयते । अत्र यद्यप्यन्ते 'अत्र नैयायिकाः प्रत्यवतिष्ठन्ते' इत्युपक्रम्य नैयायिकमतोपरि वैयाकरणैरुद्भावितान्दोषान्निराकृत्य ग्रन्थः समापितस्तथापि वैयाकरणमतस्यैव विशदतयोपपादनादेनमत्र समगृह्णाम् । वाक्यदीपिकाख्याया वाक्यवादटीकाया मुखपत्रमुद्रणावसरे प्राप्तत्वात्तामन्ते निवेशितवान् । स्फोटतत्त्वनिरूपणपुस्तके दृष्टाष्टिप्पणीरपि न्यवेशयम् । अत्र प्रातिपदिकसंज्ञावादे मुद्रणारम्भात्प्राक् पण्डितश्रीनिवासाचार्यकट्टीशास्त्री इत्येतैः, मुद्रणावसरे पण्डितरमापतिमिश्रैः, मुद्रणोत्तरं च पण्डितदत्तात्रेयशास्त्री निगुडकर इत्येतैः शुद्धपाठबोधनेनाहमनुगृहीत इति तेषामुपकारं भृशं स्मरामि ।

बाक्रे इत्युपाह्वो गङ्गाधरभट्टसूनुर्महादेवशर्मा.

शेषकृष्णविरचितं

स्फोटतत्त्वनिरूपणम् ।

शब्दब्रह्मचिदानन्दमधिष्ठानमुपास्महे ।
यस्य वर्णाः पदं वाक्यं विवर्ताः संचकासति ॥ १ ॥
महाभाष्यमतं भर्तृहरिणापि प्रकाशितम् ।
आलोच्य सर्वतन्त्राणि स्फोटतत्त्वं निरूप्यते ॥ २ ॥
न प्रत्येकं न मिलिता न चैकस्मृतिगोचराः ।
अर्थस्य वाचका वर्णाः किंतु स्फोटः स च द्विधा ॥ ३ ॥

इह खलु पदाद्वाक्याच्चार्थप्रतीतिः सर्वानुभवसिद्धा सर्ववादिसंमता च । तत्र वर्णा न प्रत्येकमर्थमभिदधति, प्रथमवर्णादेवार्थप्रतीतौ वर्णान्तरवैयर्थ्यापत्तेः । नापि मिलिताः, उच्चरितप्रध्वंसिनां क्रमिकाणां मेलनाभावात् । नाप्येकस्मृतिगोचराः, नदी रस इत्यादौ दीन सर इत्येकस्मृतिविषयत्वेनाविशेषापत्तेः । अतो वर्णाभिव्यङ्ग्यः पदस्फोटो वाक्यस्फोटो वाऽनवयव एको नित्योऽर्थवाचक इत्याह—न प्रत्येकमिति । द्विधा पदस्फोटो वाक्यस्फोटो वा । तत्र पदस्फोटवादी पदस्फोट एव नित्योऽनवयवः परमार्थसन्नधिष्ठानं वर्णवाक्ययोस्तत्राध्यासात्ते तद्विवर्ते इति तद्विभाग आविद्यकः । केवलपदस्फोटेभ्य एवाकाङ्क्षादिमहिम्ना वाक्यार्थः समुल्लसतीति मन्यते । वाक्यस्फोटवादी तु वाक्यमेव नित्यमनवयवमधिष्ठानं वर्णपदे तु तद्विवर्ते इति तद्विभाग आविद्यक इति मन्यते । वाक्यस्फोटपक्षे कश्चित्तं सावयवं मन्यते तदा तत्तत्ताल्वादिस्थानोद्भववायवीयनादापरनामकध्वनिविशेषाभिव्यङ्ग्या नित्या विभवोऽपि वर्णा एवावयवाः । इयान्विशेषः । यन्निरवयवपक्षे ध्वनीनां, सावयवपक्षे ध्वनिव्यङ्ग्यवर्णानां, स्फोटव्यञ्जकत्वमिति । वस्तुतस्तु सावयवपक्षो न संभवति । तथाहि—वर्णाः स्फोटस्यावयवा भवन्तः किं भट्टमतमवलम्ब्य विभूनि द्रव्याणि भवेयुरथवा तार्किकमतमालम्ब्य गगनगुणा आहोस्विदेकदेशीयमतमवष्टभ्य वायवीयारब्धद्रव्याणि?

---

१ अवयवत्वार्थं द्रव्यत्वम् ।

वर्णानां प्रत्यभिज्ञानबलात्स्यान्नित्यता यदि ।
अनित्यतैव किं न स्यादुत्पादादिधियां बलात् ॥ ४ ॥

न तावदाद्यः पक्षः—सर्वत्रा[1]वयवानामवयव्यपेक्षया न्यूनपरिमाणत्वं दृष्टं वर्णानां च परममहत्तां तदसंभवेऽवयवत्वाभावात्[2] । न मध्यमः—वर्णानामाकाशगुणत्वे सत्यद्रव्यतया समवायिकारणत्वाभावे द्रव्यसमवायिकारणत्वरूपस्यावयवत्वस्याभावात् । नान्त्यः—आशु[3]विनाशिनां क्रमिकाणामसहभुवामसंबद्धानामवयविनमबिभ्राणानामवयवत्वाभावादित्यनवयवः प्रत्यस्तमितवर्णपदविभागो वाक्यस्फोट एव श्रेयानिति तत्त्वम् ॥ ३ ॥

ननु वर्णाना नित्यतयास्ति समुदायः स चार्थं गमयतीत्यत आह—वर्णानामिति । योऽहं बाल्ये पितरावन्वभवं सोऽहमिदानीं नप्तॄननुभवामीति प्रत्यभिज्ञाबलादात्मनो नित्यत्वमिव स एवायं गकार इत्यादिप्रत्यभिज्ञानबलाद्वर्णानां नित्यत्वम् । न चैषा भ्रान्ता, बाधकाभावात् । अथ प्रत्यभिज्ञाबाधकं किंचिदुत्प्रेक्षणीयम् । तदुक्तम्—

उत्प्रेक्षेत[4] हि यो मोहादज्ञातमपि बाधकम् ।
स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥ इति ।

तत्रैकस्मिन्बहूनामुच्चारयतामुदात्तोऽनुदात्तः, सानुनासिको निरनुनासिकश्चेति विरुद्धधर्माध्यासाद्बाधकाद्भेदो वर्णानाम् । न चोदात्तादयो वर्णव्यञ्जकधर्मा न वर्णधर्मा इति वाच्यम् । तद्व्यञ्जका वायवस्तेषामश्रावणत्वे तद्धर्माणामश्रावणत्वापत्तेरिति । उच्यते । गुण्यग्रहणेऽपीन्द्रियाणां गुणग्रहणमस्ति कथमन्यथा भूजलाकाशाग्राहकैर्घ्राणरसनश्रोत्रैर्गन्धरसशब्दा गृह्येरन् । एतेन तारत्वादयोऽपि विरुद्धधर्मा व्याख्याताः । भवेतां वा गुणगुणिनावेकेन्द्रियग्राह्यौ तथापि न दोषः । ध्वनीनामपि शब्दवच्छ्रावणत्वेन तद्गतोदात्तादिधर्मप्रतीतेः । अथ या प्रत्यभिज्ञा सा गत्वादिजातिविषया न गादिव्यक्तिविषया । अत एव शब्दभेदोपलम्भाद्वक्तृभेद उन्नीयते । सोमशर्माधीते न विष्णुशर्माधीत इति । सत्यम्, योऽयं गादिव्यक्तिभेदमङ्गीकृत्य गत्वस्यैकस्य परो[5]पधानभेदकल्पनाप्रयासः स परं गादिव्यक्तावेवास्तु किमन्तर्गडुना गत्वेनाङ्गीकृतेन । तथाचाहुः—

---

१ तेभ्य एवार्थप्रतीतौ स्फोटवैयर्थ्यं तु न एकं वाक्यमिति प्रतीतेरौपचारिकत्वे सर्वत्रावयव्यसिद्ध्यापत्तेः । २ महापटारब्धरज्जौ तन्तूनामेवावयत्वं हेतुत्वं चेति न व्यभिचारः । ३ उत्तरोत्तरं पूर्वपूर्वस्य हेतुत्वम् । ४ कचिद्व्यभिचार(रा?)दर्शने तदुत्प्रेक्षायामिदमुच्यते भट्टैः । ५ गकाराद्युपहितत्वेन ब्रह्मसत्ताया गत्वादिरूपभेदकल्पनाप्रयासः ।

नित्यानामपि वर्णानां तत्तद्व्यञ्जकवायुभिः ।
ध्वनिभिर्वा तिरोधाने न वर्णसमुदायधीः ॥ ५ ॥

तेन यत्प्रार्थ्यते जातेस्तद्वर्णादेव लभ्यते ।
व्यक्तिलभ्यं तु नादेभ्य इति गत्वादिधीर्वृथा ॥ इति ।

व्यक्तिलभ्य उदात्तादिभेदः । एवंचाबाधितप्रत्यभिज्ञाबलादेकत्वे निश्चिते तद्व्यञ्जकध्वनिविषयोऽयं विचित्रः प्रत्ययो न वर्णविषय इति । किंच वर्णभेदे दश गकारानुदचारयदिति प्रत्ययः स्यान्न दशकृत्वो गकारमिति । तथाचाह शारीरकभाष्ये भगवान् शंकराचार्यः—वर्णव्यक्तय एव हि प्रत्युच्चारणं प्रत्यभिज्ञायन्ते द्विर्गोशब्द उच्चरित इति हि प्रतीतिः, न द्वौ गोशब्दाविति । यद्यपि सोऽयं गकार इति प्रत्यभिज्ञास्ति तथाप्युत्पन्नो गकारो विनष्टो गकारस्तारो गकारो मन्द्रो गकार इत्याद्यनेकप्रतीतिबलेन भेदे भासमाने प्रत्यभिज्ञायास्तज्जातीयत्वं विषयो नतु व्यक्त्यभेदः । न चैवं तज्जातीयोऽयमिति धीः स्यान्न तु सोऽयमितीति वाच्यम् । सैवेयं दीपशिखा, तानेव तिन्तिडीनुपभुञ्जे, तदेवेदमौषधमन्यैः पीतं मयापि पीयते, इत्यादिषु तज्जातीयप्रतीतेरपि सोऽयमित्याकारदर्शनात्, तज्जातीयोऽयं न सोऽयमिति व्यक्त्यभेदाप्रतीतेश्च । नच गत्वादिजातावेव विवदितव्यं । गकारोऽयं, गकारोऽयमित्यनुगतगकाराकारप्रतीतिबलेन स्त्रीपुंसादिवक्तृविशेषानुमानबलेन[3] च तत्सिद्धेः । [4]अन्यथा जातिमात्रोच्छेदप्रसङ्गः । न च प्रमारूपप्रत्यभिज्ञाबलेन ध्वनिगत एवायमुत्पादादिप्रत्यय इति विनिगमनाविरह इति वाच्यम् । उभयप्रतीत्यप्रामाण्यकल्पनापेक्षयैकस्या एव प्रत्यभिज्ञाया अप्रामाण्यकल्पनालाघवस्य विनिगमकत्वात् । तस्मादुभयमते स्फोटरूपशब्दपरब्रह्मणो न ब्रह्मणाप्यपह्नवः कर्तुं शक्यत इति ॥ ४ ॥

ननु मा भूदाशुविनाशित्वं नित्या एव वर्णा इति दर्शने कथमसहभाव इत्यत आह—नित्यानामपीति । नित्यानामपि अपिशब्दाद्विभूनां च

१ येन वर्णेषु व्यक्तिभेदो न स्फुटस्तेन यत्प्रत्यभिज्ञानं जातेः प्रार्थ्यते व्यक्तिलभ्यः भेदप्रत्यय इत्यर्थः । प्रत्यभिज्ञानस्य वर्णैक्याद्विरुद्धधर्मवत्तायाश्च ध्वनिगतत्वादुपपत्तिरित्यर्थः । यद्वा जातेरेकत्वेन हेतुना यत्प्रत्यभिज्ञानं तद्वर्णैक्यादुपपाद्यम् । भेदप्रतीतिस्तु व्यञ्जकध्वनिगतभेदविषयत्वेनोपपाद्येति । २ साक्षाद्वर्णगतत्वेन प्रतीयमानोत्पत्तेर्नारोप इति भावः । ३ ध्वनिवैजात्यान्नरशुकोच्चारितगयोर्न प्रत्यभिज्ञाविषयत्वमुभयमतेऽपि । वक्त्रनुमानाच्च सिद्धं वैजात्यम् । ४ व्यक्तिसादृश्येनैकाकारप्रतीतिसिद्धौ ।

पूर्वानुभूतसंस्कारकूटान्नान्त्यस्पृशोऽर्थधीः ।
स्वभावस्य विपर्यासात्कल्पनेऽन्यस्य गौरवात् ॥६॥

वास्तवी संगतिरतिप्रसङ्गिनी सर्वेभ्यः सर्वदार्थप्रत्ययप्रसङ्गादित्यनुभवानुसारिणी सा वक्तव्या तेषां चानेकत्वादनुभवकर्मतया अभिव्यक्तिरूपेण साहित्यं न संभवति । तथा तद्व्यञ्जका वायवो ध्वनयश्च बहवस्तैश्च व्यवधाने नित्यपक्षेऽपि नामीषां समुदाय इति ॥ ५ ॥

नन्वर्थप्रत्ययानुपपत्त्या योऽयं नित्यो निरवयवः स्फोटोऽङ्गीक्रियते स न संभवति अर्थप्रतीतेरन्यथोपपत्तेः। तथाहि—स्मरणफलोन्नीतसद्भावास्तावत्पूर्वपूर्ववर्णानुभवसंस्कारास्तेषां कूटोऽन्त्यवर्णानुभवसहकारी । तत एवार्थप्रतीत्युपपत्तिरित्यत आह—पूर्वेति । यो यद्विषयानुभवजन्यः स तद्विषयां स्मृतिं प्रसूत इति संस्कारस्य स्वभावः । अर्थप्रत्ययप्रसवे त्वसौ विपर्यस्येत् । किंच यदि वर्णानुभवजनितः संस्कारकूटोऽन्यस्मिन्नर्थे धियमादध्यात्तदा सर्वोऽपि जनो यं कंचिदेकमर्थमनुभूय सर्वं जानीयादित्यतिप्रसङ्गः। तथाच द्वितीयटीकायां वाचस्पतिमिश्राः—'भावनापरनाम्नः संस्कारस्य स्वोत्पादकानुभवगोचरस्मृतिजननादन्यत्र सामर्थ्यादर्शनात् । नहि गवानुभवजनितः संस्कारः करोति स्मृतिं तुरगे' इति । एतेन प्रत्येकवर्णानुभवजनितसंस्कारकूटेन तावद्वर्णगोचरैका समूहालम्बनरूपा स्मृतिर्जन्यते। सा चान्त्यवर्णसंगताऽर्थधियमाधत्त इति निरस्तम् । न च क्लृप्तस्मृतिजननशक्तौ तादृशसंस्काररूपायां लाघवादर्थधीजननशक्तिकल्पनमिति वाच्यम्। शक्तावपि शक्तिकल्पनायां वह्न्यादिशक्तावपि शक्तिकल्पनेऽनवस्थादूषणप्रसङ्गः । किंच यथा स्मृतिलक्षणकार्यान्यथानुपपत्तिकल्पिता संस्काराख्या शक्तिर्नान्तःकरणादौ कल्प्यते किंतु यत्रात्मनि तत्फलं स्मृतिलक्षणं समवेतं तत्रैव तथाऽर्थप्रत्ययानुपपत्तिकल्पितार्थप्रत्ययजननशक्तिस्तत्फलवत्यात्मनि कल्पयितुं युज्यते न पुनरतद्वत्यां स्मृतिजननशक्तौ । न चात्मन्येवास्त्वियमिति वाच्यम् । एकैकवर्णानुभवेन स्वस्वविषयस्मृतिजननशक्तिरेका अर्थप्रत्ययजननशक्तिश्चापरेति कल्पनागौरवप्रसङ्गात्। किंच गादिरूपिते तदधिष्ठानभूते चिदात्मनि तामङ्गीकुर्वता भवताप्यागतमस्मदीये पथीति न नो विवादः ॥ ६ ॥

१ संयोगाभिव्यक्तिर्व्यञ्जकक्रमेणैव । २ स्मृतिवैयधिकरण्यात ।

नित्यानां च विभूनां च क्रमो नास्त्येव वास्तवः ।
उपलब्धिनिमित्तोऽस्ति सा चेदेका कुतः क्रमः ॥७॥

ननु ये यथास्वं वर्णैराहिताः संस्कारास्ते संभूय निखिलवर्णविषयमेकमेव स्मरणं प्रसुवते । तथाचैकस्मृतिसमारोहिणो वर्णा अर्थस्य वाचका इति न गौरवं न च स्वभावविपर्यासः । तथाहि—संस्काराणां किं विजातीयोत्पादने सजातीयापेक्षा नास्तीत्युच्यते, किंवानेकविषयकैकस्मृतौ । नाद्यः । इदमेकमिदमेकमित्येकैकविषयकानुभवद्वयात् द्वाविति बुद्धिरुदेति सा च तदनुभवद्वयजनितसंस्काराभ्यामेव जन्यते । तदुक्तं भट्टपादैः—

सर्वेषु चैतदर्थेषु मानसं सर्ववादिनाम् ।
दृष्टं समुच्चयज्ञानं क्रमज्ञानेषु सत्स्वपि ॥
न चेत्तदभ्युपेयेत क्रमदृष्टेषु नैव हि ।
शतादिरूपं जायेत तत्समुच्चयदर्शनम् ॥ इति ।

नान्त्यः । ते घटा इत्यादावनेकविषयकैकस्मृतौ संस्काराणामन्योन्यापेक्षादर्शनात् । तथा चैकशः प्रत्येकस्मृतिजनकत्वेऽपि मिलितानां संस्काराणामनेकवर्णगोचरैकस्मृतिजनकत्वं न विरुध्यते । दृष्टं चैतत्—संस्कारश्चक्षुराद्यनपेक्षः स्मरणकारणं, चक्षुरादयश्च तन्निरपेक्षा आलोचनकारणं, प्रत्यभिज्ञाने तु संस्कारसापेक्षाश्चक्षुरादय इति ।

न चैकस्मृत्युपारूढवर्णानां वाचकत्वे नदी दीन इति सरो रस इति क्रमस्मरणनियमाभावादक्रमविपरीतक्रमाभ्यां विशेषो न स्यादिति वाच्यम् । यावद्भ्यो यादृशेभ्यश्चार्थः प्रतीयते तावतां तादृशानां चार्थावबोधकत्वाङ्गीकारात् । तदुक्तम्—

यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादने ।
वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधकाः ॥ इति ।

यादृशा इत्यनेनैकवक्तृकाः क्रमिकाश्चेत्युक्तं, क्रमश्चानुपूर्वी, आनुपूर्वी च पूर्वपूर्ववर्णध्वंसो वा, पूर्वपूर्ववर्णज्ञानानन्तरमुत्तरोत्तरवर्णज्ञानं वा, पूर्वपूर्ववर्णोच्चारणानन्तरमुत्तरोत्तरवर्णोच्चारणं वा । एवं च यथा क्रमानुरोधिन्य एव पिपीलिकाः पङ्क्तिबुद्धिमारोहन्ति तथा क्रमानुरोधिन एव वर्णाः पदबुद्धिमारोक्ष्यन्ति । तथाच यद्यपि स्मरणलक्षणैकप्रतीतिवर्तिनां न विशेषस्तथापि यौगपद्यविपरीतक्रमाभिव्यक्त्यपेक्षया क्रमोच्चारितानामस्त्येव

नानुभूतिक्रमाद्वर्णाः क्रमिकाः स्मृतिगोचराः ।
गोचरोऽनुभवो नास्यास्तत्क्रमस्तु कुतस्तराम् ॥ ८ ॥
इदं पदमिदं वाक्यमिमे वर्णा इति त्रिषु ।
प्रत्ययेषु स्फुटं स्फोट एक एवानुभूयते ॥ ९ ॥

विशेष इत्यत आह—नित्यानामिति । वर्णानां नित्यविभूनां कालतो देशतश्च न वास्तवः क्रमो नियामकः, सत्तामात्रेण तदङ्गीकारेऽतिप्रसङ्ग इति प्रतिपत्त्युपाधिकोऽयमङ्गीकार्यः । सा चेदेका स्मृतिरूपा कुतस्तर्हि क्रम इत्येकस्मृत्युपारूढानां वर्णानां क्रमाक्रमविपरीतक्रमाभिव्यङ्ग्यानां न कश्चिद्विशेष इति ॥ ७ ॥

ननु पूर्वपूर्ववर्णानुभवाः क्रमवन्तस्तत्क्रमतया वर्णेष्वप्येकस्मृतिसमारोहिष्वौपाधिकः क्रमः स्वीकार्यः । तथाचाहुर्मीमांसावार्तिककारमिश्राः—

पदावधारणोपायान्बहूनिच्छन्ति सूरयः ।
क्रमन्यूनातिरिक्तत्वस्वरवाक्यश्रुतिस्मृतीः ॥ इति ।

न केवलमेकार्थप्रत्यय एवैकं पदमिति व्यपदेशनिमित्तम्, किंतु क्रमादयोऽपीत्यर्थः । तत्र रसः सर इत्यत्र क्रमः । करः करञ्ज इत्यत्र न्यूनातिरिक्तत्वे । इन्द्रशत्रुरित्यत्र स्वरः । सा रङ्गमागता नर्तकीति वाक्यम् । परमे व्योमन्निति श्रुतिः । गृभ्णामीति ‘ हृग्रहोर्भश्छन्दसि ’ इति पाणिनिस्मृतिः । तथाच पूर्वानुभवक्रम एकस्मृतौ विशेषकः । तथाचाहुर्न्यायटीकाकारमिश्रा अपि—‘अर्थप्रत्ययकारणत्वं च न वर्णमात्राणामपि तु क्रमन्यूनातिरिक्तत्वाद्युपहितानाम्’ इत्यत आह—नानुभूतीति । इयं पूर्वपूर्ववर्णानुभवजन्या तावद्वर्णविषयिण्येका स्मृतिः पूर्ववर्णानुभवानेव न गोचरयति कुतस्तेषां क्रमम् ? एवं च प्राचीनानुभवोपाधिकोऽपि क्रमः स्मर्यमाणेषु वर्णेषु न विशेषक इति न तावद्वर्णसमूहावलम्बनस्मृत्यार्थप्रत्ययोपपत्तेरन्यथोपपत्तिरिति ॥ ८ ॥

ननु प्राभाकरमतेऽनुभवाः स्वप्रकाशा इति तत्क्रमः स्मृतौ भासते । सत्यं, नहि ज्ञानं स्वप्रकाशमिति तत्क्रमोऽपि स्वप्रकाशः, तस्याऽस्वरूपत्वादविषयत्वाच्च । अथ स्वरूपविषयातिरिक्त आत्मांशः स्फुरतीति चेत्, तानेवैतत्पृच्छ ये तदङ्गीकुर्वते न वयं त्रिपुटीप्रत्यक्षवादिनः । न च तैरपि ज्ञानक्रमः स्वप्रकाश इति स्वीक्रियत इति । ननु कार्यानुसारिणी कारणकल्पना, तथाचाज्ञातोऽपि वस्तुतः स्थितः क्रमो विशेषको वक्तव्य इति

नित्या नावयवा वर्णा नाप्यनित्या इहोचिताः ।
विवर्ताः केवलं तस्य प्रपञ्चा ब्रह्मणो यथा ॥ १० ॥

गामानयेति दृश्यमानेभ्य एव वर्णेभ्यश्चेदभिधेयप्रत्यय उपपद्यते तदा नैतानपहायादृश्यमानमनवयवकं स्फोटतत्त्वं कल्पनीयं प्रमाणाभावात् । या चार्थप्रतिपत्तिस्तत्प्रमाणत्वेनोक्ता साऽन्योन्याश्रयग्रस्ता । तथाहि अर्थप्रतिपत्तौ सत्यां तदनुपपत्त्या स्फोटप्रतिपत्तिः, स्फोटप्रतिपत्तौ चार्थप्रतिपत्तिरित्यत आह—इदमिति । न कल्पयाम्यहं स्फोटं, प्रत्यक्षमेव त्वेनमवगच्छामि । तथाहि गौरित्येकं पदं गामानयेत्याद्येकं वाक्यमिति सर्वजनसिद्धोऽयमनुभवो नापह्नवनीयः । तत्र पूर्वपूर्ववर्णग्रहणाहितसंस्कारायामनुसंहारबुद्धावश्यमभिन्नं वस्त्वेकं समुल्लसतीत्येषणीयम् । न खल्वियमभिन्नवस्तुनिर्भासा बुद्धिः परस्परव्यतिरिच्यमानात्मनो वर्णानेव गोचरयितुमर्हति । एतादृशबुद्धिविषये वस्तुन्येकस्मिन्नेकत्वनानात्वयोरसमवायात् । न च वनमिति बुद्धेर्वृक्षा इव पदमितिवाक्यमितिबुद्धेर्वर्णा एव विषया भवन्तीति वाच्यम् । तत्रैकदेशस्येवात्रैकबुद्धिविषयत्वस्यैकार्थप्रत्यायकत्वादेर्वोपाधेरननुसंधानात् । अत्र पदस्फोटवादिनोऽपि मतसमर्थनाय पदमितिबुद्धेरित्युक्तम् । वस्तुतस्त्वनवयवः स्फोट एव वाक्यार्थवाचक इति मुख्यस्फोटवादिनो मतम् । तत्र चेदं तत्त्वं—कदाचिद्वाक्यमिति कदाचिदियन्ति पदानीति कदाचिदेतावन्तो वर्णा इति बुद्धिरुदेति । तत्राद्ये तावदेकबुद्धेरेकत्वावगाहिन्या एकमेव किंचिद्वस्तु प्रतीयमानं कारणमित्युपपादितम् । अन्त्यं द्वयमवशिष्यते । तत्र यदि देवदत्त गामानयेति त्रिभिः पदैः पारमार्थिकविशिष्टपौर्वापर्यैरारब्धं वाक्यं स्यात्तदा आनय गां देवदत्तेत्युक्ते तस्यावयविनो भङ्गात्तज्जन्यार्थप्रतीतिलक्षणाऽर्थक्रिया न स्यात् , ध्वस्तेषु कपालेषूदकाहरणादिवत् । तथा यदि देवदत्त गामानयेत्यत्र पारमार्थिकाः क्रमविशेषविशिष्टा अष्टौ वर्णा वाक्यारम्भकाः स्युस्तदा गां देवदत्तानयेत्यत्र सप्तवर्णा भिन्नक्रमाश्चेति ततो नार्थप्रत्ययः स्यात् । तस्माद्वर्णपदविभागमाविद्यकमङ्गीकृत्य सर्वेषूच्चार्यमाणेष्वनुस्यूतः कश्चिदर्थप्रत्ययौपयिको वाक्यात्माऽनवयवो नित्यः स्फोटोऽङ्गीकर्तव्य इति ॥ ९ ॥

ननु मा भूवन्वाक्यमितिबुद्धेर्वर्णा विषयाः वाक्ये एते वर्णा इति तु बुद्धिः सर्वजनीना अनेकाकारा कथमस्या वाक्यात्मा स्फोटो विषयः । न च वने

१ आविद्यकवर्णाद्युपहितश्च वाचकः तेन न सर्वत्र सर्वबोधः ।

यथा मणिकृपाणादौ मुखमेकमनेकधा ।
तथैव ध्वनिषु स्फोट एक एव विभिद्यते ॥ ११ ॥
स्फोटो वर्णातिरिक्तोऽपि तत्तादात्म्यमुपेयिवान् ।
प्रत्ययो जायते तस्मादसौ तद्वर्णरूषितः ॥ १२ ॥

एते वृक्षा इतिवत् पटे एते तन्तव इतिवच्च वाक्ये एते वर्णा इति प्रत्यय इति वाच्यम् । अवर्णात्मन्यवर्णासमवेते वाक्ये वर्णोपरक्तबुद्धेरभावात् । दृष्टा हि तदात्मनि तदुपरागवती बुद्धिर्वने वृक्षा इति, तत्समवायिनि पटे तन्तव इति । नैतदुभयं प्रकृतेऽस्त्यनङ्गीकारादित्यत आह—नित्या इति । इह नित्ये स्फोटे नित्या विभवश्च वर्णा नावयवा उचिताः । अवयविन्यूनपरिमाणत्वादवयवानाम् । नाप्यनित्यास्तथा, अवयविनो नित्यस्यावयवासंभवात्[१] । अतः केवलं तस्य स्फोटस्य विवर्ताः । एवं च प्रमारूपा वर्णोपरागवती धीर्माभूत् भ्रान्तिरूपा त्वस्त्येव । नच वस्तुतस्तद्रूपेण तत्समवायितया वा तदुपरक्तबुद्धिरिति नियमः । शुक्तेरपि रजतोपरक्तबुद्धिविषयत्वात् । तस्माद्विवर्ताधिष्ठानस्य परमार्थसतः स्फोटरूपस्याविद्याकल्पितेन वर्णविवर्तेन तत्तदुपरागवती प्रख्या न विरुध्यते । नच वर्णानां क्वचिदप्यभावान्न विवर्त इति वाच्यम् । क्वाप्यसतां घटादिप्रपञ्चानामिव ब्रह्मण्यवभासोपपत्तेरित्यन्यत्र विस्तर इत्याह—प्रपञ्चा इति ॥ १० ॥

ननु यदि वर्णैर्नित्योऽनवयवः स्फोटो व्यज्यते तदा कथमस्मादविलक्षणाद्विलक्षणतत्तदर्थप्रतिपत्तिरित्यत आह—यथेति । यथा मणिकृपाणदर्पणादौ मुखं नियतग्रीवास्थानमपि नियतगौरादिवर्णमपि नियतवितस्त्यादिपरिमाणमपि अनेकविधस्थानवर्णपरिमाणमिवाभिन्नमपि भिन्नमिव प्रतीयते तथा तत्तत्प्रयत्नभिन्नेषु ध्वनिषु स्फोट एकोऽपि नानावर्णात्मेव निरवयवोऽपि सावयव इव भिद्यमानः प्रतीयते । तथा च वाच्यस्य घटादेरर्थस्य, वाचकस्य स्फोटस्य भेद औपाधिकः । अत एव शब्दार्थयोरभेदमाद्रियन्ते ॥ ११ ॥

ननु गौरितिबुद्धिः पूर्वानुभूतान् गकारादीनेवावगाहते न तदतिरिक्तं स्फोटं, यदि गकारादिविलक्षणमवभासयेत्तदा न गकारादिरूषितः प्रत्ययः स्यात् । नहि वराहधीर्महिषरूषितं वराहमवगाहते । यदि चास्या धियोऽर्थान्तरो विषयः स्यात्तदा दकारादय इव गकारादयोऽपि व्यावर्तेरन्नित्यत आह—

---

१ मध्यमपरिमाणत्वेऽप्यनारभ्यत्वादवयविनोऽवयवासंभवः ।

पूर्वपूर्वानुभूजन्यभावनासचिवेऽन्तिमे ।
चेतसि स्फुरति स्फोटो रत्नतत्त्वमिव स्फुटम् ॥१३॥
नाधिष्ठानं विनाध्यस्तप्रतीतिरुपजायते ।
तस्मात्परस्पराध्यास इति सर्वं समञ्जसम् ॥ १४ ॥

स्फोट इति । यद्यपि वर्णव्यङ्ग्यो वर्णातिरिक्तः स्फोटस्तथापि स्वाध्यस्ततत्तद्वर्णतादात्म्यमुपगच्छति तस्मात्तत्तद्वर्णरूषितः प्रत्ययो जायते न दकारादिरूषितः । वराहमहिषयोस्तु नाधिष्ठानविवर्तभाव इति नानयोस्तादात्म्यबुद्धिः ॥ १२ ॥

ननु प्रत्येकमभिव्यञ्जकत्वे ध्वनीनां प्रथमादेव ध्वनेः स्फोटप्रतीतेस्तन्मात्रनिबन्धनत्वाच्चार्थप्रतीतेरुपपत्तौ द्वितीयादीनामानर्थक्यमित्यत आह— पूर्वपूर्वेति । व्यञ्जयन्तोऽपि हि प्रत्येकमिमे ध्वनयो न द्रागेव स्फोटात्मानमवभासयितुमीशते अपि त्वीषद्रूपम् । तथाच पूर्वपूर्ववर्णाभिव्यक्तिजनितसंस्कारसहितचरमबुद्धौ स्फुटतरं चकास्ति स्फोटतत्त्वमिति प्रागनुत्पन्नायास्तदनन्तरमुत्पादोऽर्थधिय इति नोत्तरेषामानर्थक्यम् । न प्राचां, तदभावे तज्जनितसंस्कारपरिपाकाभावेनानुग्रहाभावादन्त्यस्य चेतसस्तद्व्यञ्जनेऽक्षमत्वात् । यदाह भर्तृहरिः—

नादैराहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह ।
व्यावृत्त[1]परिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवधार्यते ॥ इति ।

यथा रत्नपरीक्षिणः पुनः पुना रत्नं वीक्षमाणस्य रत्नदर्शनानि प्रत्येकं रत्नस्वरूपमवगाहमानान्यपि न सहसैव समानासमानजातीयव्यावृत्तं तत्त्वमवभासयन्ति । किंतु पश्चषदर्शनजनितसंस्कारसचिवे चरमचेतसि चकास्ति रत्नतत्त्वम् ॥ १३ ॥

ननु पूर्वपूर्ववर्णबुद्धावीषत्, चरमबुद्धौ[2] तु स्फुटतरं स्फोटो न संभवति चरमज्ञानकाले प्राचां प्रत्ययानामतीतत्वात्तत्काले चरमज्ञानस्यानागतत्वादिति नासतां प्राचामसता चरमवर्णेनोपकारः । न च निर्भागे पदात्मनि वाक्यात्मनि वा स्फोटे गृहीते किंचिदस्याऽगृहीतमवशिष्यते यदग्रहणादव्यक्तत्वम् । नापि समारोपः सामान्यविशेषभावविरहात् । नहि सामान्यात्मनाप्यगृहीता शुक्ती रजतसमारोपविषयः । तस्माद्गौरित्यनुसंहारबुद्धिः परस्पर-

१ वाक्यपदीये 'आवृत्त' इति पाठः । २ पूर्वपूर्ववर्णानुभवाहितसंस्कारसहिता अन्त्यवर्णबुद्धिः ।

सत्यस्फोटप्रमोदेति मिथ्यावर्णावभासतः।
आराद्वनस्पतौ हस्तिबुद्धेरिव तरुप्रमा॥ १५॥
प्रत्यक्षज्ञाननियता व्यक्ताव्यक्तावभासिता।
न जायते जायते चेद्व्यक्त्यैवेतरमानधीः॥ १६॥

व्यावृत्तवर्णरूपावगाहिनी न वर्णानुविद्धैकवस्तुगोचरेत्यत आह—नाधिष्ठानमिति। वर्णा गादयोऽपि विवर्तास्ते चाधिष्ठानचैतन्यरूपे शब्दब्रह्मण्यध्यस्तास्तज्ज्ञाने स्फोटज्ञानमेव किंतु नासावर्थप्रतिपादक इत्यस्फुट इत्युच्यते। यदा तु प्राचीनप्रत्ययप्रचयरचितभावनापरिपाकसंवलिते चरमे चेतसि स्फुरति तदार्थप्रतिपत्तिहेतुरिति स्फुटतरमभिव्यक्तः स्फोट इत्युच्यते इति। यद्वा पूर्वपूर्ववर्णैरीषत्संदिग्धश्चरमवर्णबुद्ध्या तु नितरां निश्चयेन ग्राह्यः। तथाहि कमलमित्युक्ते ककारमकारानुभवेऽपि किं कमलीयः स्फोटः कमनीयो वेति संदेहो नापगच्छति तावद्यावन्न चरमो लो नो वानुभूयते। तस्मादीषत्त्वं संदिग्धत्वं, निश्चितत्वमेव स्फुटतरत्वम्। अत एवान्त्यबुद्धिनिर्ग्राह्यं संहृतक्रमस्वरूपं स्फोटमाहुरालंकारिका ध्वनिकारादयः। एतेनानंशस्य निखिलसामान्यविशेषविरहिणः स्फोटस्य स्फुटास्फुटावभासो न संभवतीति निरस्तम्। अर्थप्रतीत्यनुरोधेन तत्कल्पनस्याविद्यकस्यावश्यकत्वादिति॥१४॥

ननु यदि वर्णा विवर्ता उक्तास्तदा मिथ्याभूतैरमीभिः कथं परमार्थभूतस्य स्फोटस्य प्रमारूपो निश्चयः, मिथ्याभूतात्परमार्थभूतस्य निश्चयादर्शनादित्यत आह—सत्यस्फोटप्रमेति। दूरे वतमाने वनस्पतौ वृक्षे तद्दोषवशाज्जाताया मिथ्याभूताया अपि हस्तिबुद्धेर्यथा प्रवृत्तिद्वारा तरुप्रमोदेति तथा मिथ्याभूतवर्णावभासादपि सत्यस्फोटप्रमेति भावः॥ १५॥

ननु यथा प्राञ्चो वर्णा अव्यक्तं चरमस्तु तज्जन्यभावनासहितः स्फुटतरं स्फोटमवभासयति तथा पूर्वे वर्णाः प्रत्येकमव्यक्तां चरमस्तु तज्जन्यसंस्कारसहितो व्यक्तामर्थधियमेव किं नाधत्ते, किं तादृशानवयवस्फोटकल्पनयेत्यत आह—प्रत्यक्षेति। गौरित्येकं पदमिति प्रत्यक्षस्य स्फोटस्य व्यक्ताव्यक्तावभासित्वमभिव्यक्तितारतम्यं संभवति न परोक्षस्याभिधेयज्ञानस्य। तथाहि शुक्तिसंपुटात्पृथक्कृते मुक्ताफले भवति परीक्षकाणां प्रथममव्यक्तं दर्शनं, ततो व्यक्तं, ततो व्यक्ततरं ततो व्यक्ततममित्यनुभवमार्गागतं, शुक्तिसंपुटान्तःस्थिते त्वमुष्मिन्ननुमेये नेदमभिव्यक्तितारतम्यमित्यप्यनुभव-

यत्रानुवृत्ते व्यावृत्तिर्यस्य तस्मात्स भिद्यते ।
नदीदीनजरेत्यादिष्वेव वर्णेषु तद्विदा ॥ १७ ॥
प्रमा न जायते तावद्यावन्न ज्ञायते पदम् ।
पदं हि ज्ञातं करणं सर्वे स्वीकुर्वते बुधाः ॥ १८ ॥

सिद्धं, प्रत्यक्षेतरप्रमाणस्य प्रमेयसद्भावमात्रनिर्भासाय प्रवृत्तत्वात् । एवं च प्रमाणान्तरजन्या बुद्धिरसति कारणे न जायत एव सति तु कारणे जायते चेत्तदा व्यक्तैवेति न स्फोटार्थधियोः समानयोगक्षेमतेति । एतेन स्फोटव्यञ्जकत्वेऽपि वर्णानां प्रत्येकसमुदायविकल्पावकाशः । तदुक्तम्—

यस्यानवयवः स्फोटो व्यज्यते वर्णबुद्धिभिः ।
सोऽपि पर्यनुयोगेन नैवानेन वियुज्यते[1] ॥

इति निरस्तं, स्फोटार्थधियोः प्रत्यक्षपरोक्षतया तद्व्यञ्जकत्वे वर्णानां समत्वाभावात् ॥ १६ ॥

ननु 'ते विभक्त्यन्ताः पदम्' इति न्यायसूत्रम् । अस्यार्थः—त एव वर्णा एव विभक्त्यन्ताः पदं न स्फोटाख्यमिति ततो न वर्णभिन्नः पदात्मा स्फोट इत्यत आह—यत्रेति । यस्मिन्ननुवर्तमाने यद्व्यावर्तते तस्मात्स भिद्यते यथा सुवर्णावयवेष्वनुवर्तमानेष्वेव व्यावर्तते कटकमुकुटादिः । एवमनुवर्तमानेष्वेव वर्णेषु व्यावर्तन्ते पदात्मानो नदी दीन जरा राजेत्यादयः स्फोटा अतस्तेऽपि पदेभ्यो भिन्ना इति ॥ १७ ॥

ननु तथाप्येकं पदमित्येकत्वधीर्नैकवस्तुव्यवस्थापकं प्रमाणमपि तु व्यपदेशमात्रनिमित्तमिति यथा करितुरगादिषु चम्पकाशोककिंशुकादिषु कश्चिद्वैरिविध्वंसादिरेकदेशादिश्चोपाधिः, सेनावनमितिव्यपदेशमात्रजनकः, तथात्राप्येकार्थप्रत्ययहेतुत्वमेकार्थसंबन्धाख्यानं[2] वाऽस्तूपाधिः । न चैकपदत्वे एकार्थप्रतीतिहेतुत्वमवगन्तव्यमवगते च तस्मिन्नेकपदत्वमित्यन्योन्याश्रय इति वाच्यम् । पूर्वमेकपदत्वावधारणानभ्युपगमात् । नहि पदावधारणाधीनः संबन्धबोधः, किंतु तदधीनं पदज्ञानं, तथाचाहुर्द्वितीयटीकायां वाचस्पतिमिश्राः—एकस्मृतिसमारोहिणां वर्णानामसत्यप्यर्थावबोधे सुज्ञानत्वादिति । एकस्मृतिविषयानेकवर्णस्य च स्वार्थेन संकेतग्रहस्यापि सुकरत्वं, तदुत्तरकालं च पदमिति कारकशब्दप्रवृत्तिः । इतरथा सर्वेष्वेव

---

१ नैकेनापि विमुच्यते इति पाठः । २ एकार्थसंबन्धाख्यानबोधो वेति पाठान्तरम् ।

कारकपदेषु दुर्वारमितरेतराश्रयत्वं स्यात् । तस्माद्व्यपदेशमात्रानुरोधेनानेकवर्णमात्रावभासिनीषु श्रोत्रजासु बुद्धिषु तदाहितवासनालब्धजनुषि चानुभूतवर्णसंकलनात्मिकायां स्मृतावप्रथमानः प्रथमानवर्णोपमर्देन न शक्यः पदात्मा स्फोट इति वक्तुम् । किंच गौरित्येकं पदमित्यत्र भासमानमौपाधिकमेकत्वमस्यामेव भासमानं स्वाभाविकं वर्णनानात्वं न बाधितुमुत्सहते । नह्यौपाधिकं सिंहत्वं स्वाभाविकं नरत्वं बाधते । अत एव नैकत्वनानात्वयोर्विरोध इत्यत आह–प्रमेति । न खल्वज्ञातपदस्वरूपावधिः पदादर्थमवबुध्यते, सा रज्जुमागतेत्यादौ सेति पदमजानतोऽभिमतार्थप्रतिपत्तिविरहादिति ज्ञातैकपदस्वरूपावधिः पदादर्थमवबुध्यते, हि यतः सर्वे वादिनः पदं ज्ञातं सत्प्रमां प्रति करणमिति मन्यन्ते । तथा एकार्थसंबन्धाख्यानमप्येकपदत्वं नापादयति । तथाहि–वर्णानां केवलानां पदभावमनापन्नानामर्थप्रत्यायकत्वे व्युत्क्रमोच्चारितानामपि तत्प्रतिपादकत्वं स्यात् । असंबद्धानां तु प्रत्यायकत्वे यतः कुतश्चिद्यस्य कस्यचिदर्थस्य प्रतीतिः स्यादित्यवश्यं संबन्धो वाच्यः । स च पदत्वमापन्नत्वे वर्णानां संभवति । तच्च पदत्वं न तादृशस्फोटमन्तरेण । संबन्धाख्यानात्पदत्वकल्पने ध्रुवमन्योन्याश्रयः—पदत्वात्संबन्धित्वे सति आख्यानमाख्यानाच्च पदत्वमिति । चक्रकं च—पदत्वे सति संबन्धित्वं संबन्धित्वे च सति संबन्धित्वाख्यानं संबन्धित्वाख्यानाच्च पदत्वमिति । व्यवस्थितमेव तु वाचकत्वमाख्यायत इति ।

यत्तु *लीलावतीकारेणोक्तम्*–एकं पदमिति धीरेकसुप्तिङन्तत्वावच्छेदेनोपपद्यते । तत्रैकसुप्तिङन्तत्वावच्छेदः पदत्वे, नानासुप्तिङन्तत्वावच्छेदो वाक्यत्वे प्रयोजकः स्वीकरणीय एव । अन्यथा स्फोटत्वाविशेषे अयं पदस्फोटोऽयं वाक्यस्फोट इति विचित्रव्यवहारस्त्वन्मते कथं स्यादिति । तन्न ।

सुबन्ततिङन्तयोरनुगतस्यैकस्य पदत्वावच्छेदकस्य वक्तुमशक्यत्वात् । अन्यतरत्वस्य गौरवेणावच्छेदकत्वाभावात् । न च संख्यावाचकप्रत्ययत्वमेवानुगतमिति वाच्यम् । प्रत्ययत्वस्यैकस्यानुगतस्याभावात् । प्रतीयते येनार्थ इत्यन्वर्थस्य प्रकृत्यादिसाधारणतयातिप्रसङ्गात् । एक एव एकक इत्यादौ स्वार्थप्रत्ययेऽव्याप्तेश्च । विभक्त्यन्तवर्णाभिव्यङ्ग्यत्वस्य पदस्फोटव्यवहारजनकत्वाद्विभक्त्यन्ततत्तद्वर्णाभिव्यङ्ग्यपदस्फोटेभ्य एवाकाङ्क्षादिमहिम्ना वाक्यार्थसमुल्लासे पदस्फोटवादिमते वाक्यस्य न विवर्तत्वाङ्गीकारः । नित्यनिरव-

गौरित्येकावभासेऽस्मिन्नुपाधिं कंचिदिच्छताम् ।
न भवेत्किंचिदप्येकं न च नानापि तद्विना ॥ १९ ॥

यववाक्यस्फोटवादिमते विभक्त्यन्तवर्णरूपपदस्य विवर्तत्वे दोषाभावात् ।

तस्मादेकत्वबुद्ध्या अनौपाधिक्या बाधितेयं वर्णनानात्वबुद्धिर्विवर्ततामालम्बमाना अधिष्ठानं स्फोटमेवालम्बत इति युक्तमुत्पश्यामः ॥ १८ ॥

किंच गौरित्यत्राबाधिताप्येकत्वधीर्यदि प्रत्यक्षापलापिनां तत्तत्स्वसिद्धान्तश्रद्धाव्यामोहापस्मारिणौमापाधिकी स्यात्तदा सर्वत्र यत्किंचिदेकोपाधिसंभावनया काप्येकत्वबुद्धिः पारमार्थिकी न स्यात् । तद्विरहे तन्निबन्धनद्वित्वादिप्रतीतेरपि विरहे शून्यमेवेदं जगदापद्येतेत्यत आह—गौरितीति । इच्छतां वादिनां किंचिद्वस्तु तद्विना एकं विना ॥ १९ ॥

अथ न्यायमतानुसारेण पदप्रक्रिया ।

तत्र प्रथमवर्णज्ञानस्योत्पादस्तत्संस्कारस्योत्पद्यमानतेत्येकः कालः१ । ततः संस्कारस्योत्पादस्ततो द्वितीयवर्णज्ञानस्योत्पादस्तेन च द्वितीयवर्णज्ञानेन पूर्ववर्णानुभवजनितसंस्कारसहितेन द्वितीयवर्णसंस्कारस्योत्पद्यमानता पूर्ववर्णज्ञानविनश्यत्तेत्येकः कालः २ ।—यद्यप्युत्पद्यमानता उत्पत्तिकारणसान्निध्यं विनश्यत्ता च विनाशकारणसान्निध्यं तच्च ज्ञानं द्वितीयवर्णस्यैवेति न कार्यकारणभावस्तथापि पूर्वपूर्ववर्णसंस्कारोत्पाद(ज्ञान?)विनाशौ प्रति कारणत्वमस्त्येव—। ततो द्वितीयवर्णसंस्कारस्योत्पादः, द्वितीयवर्णज्ञानविनश्यत्ता, प्रथमवर्णज्ञानस्य विनाशः, अन्त्यवर्णानुभवस्योत्पादः, पूर्ववर्णद्वयानुभवजनितसंस्कारद्वयेनान्त्यवर्णानुभवसहकारिणा पूर्ववर्णद्वयविषयस्मरणस्योत्पद्यमानतेत्येकः कालः ३ । ततो वर्णद्वयस्मरणस्योत्पादः, अन्त्यवर्णानुभवस्य विनश्यत्ता, द्वितीयवर्णज्ञानस्य विनाशः, ततः संकेतस्मृतेरुत्पद्यमानतेत्येकः कालः ४ । ततः संकेतस्मृतेरुत्पादस्तद्वर्णद्वयस्मरणस्य विनश्यत्ता, अन्त्यवर्णानुभवस्य विनाशः, पदार्थप्रतिपत्तेरुत्पद्यमानतेत्येकः कालः ५ । ततः पदार्थप्रतिपत्तेरुत्पादस्तत्स्मरणस्य विनाशः, संकेतस्मृतेर्विनश्यत्ता, पदार्थसंस्कारस्योत्पद्यमानतेत्येकः कालः ६ । ततस्तत्संस्कारस्योत्पादः, पदार्थप्रतिपत्तेर्विनश्यत्ता, संकेतस्मृतेर्विनाश इत्येकः कालः ७ । ततः पदार्थप्रतिपत्तेरपि संस्काराद्विनाशः ८ ॥

यद्यप्यस्यां प्रक्रियायां संकेतस्मृतिसमय एवान्त्यवर्णानुभवस्य स्मरणेन

विनाशितत्वान्न पदार्थप्रतिपत्तिं प्रति कारणत्वसंभवस्तथाप्यन्त्यवर्णानुभवस्य पदस्मरणादिः सर्वो व्यापार एवेति न दोषः ।

अथ वाक्यप्रक्रिया ।

अन्त्यवर्णानुभवस्योत्पादः, स्मरणस्य विनश्यत्ता, ततः संस्कारपदप्रतिसंधानयोरुत्पद्यमानतेत्येकः कालः १। अथ तयोरुत्पादः, स एव पदप्रतिसंधानात्मा समयसंस्कारस्योद्बोधः, संबन्धस्मरणस्योत्पद्यमानता, संस्काराद्विचित्रप्रत्ययविनश्यत्तेत्येकः कालः २। अथ [1]संबन्धस्मरणस्योत्पादः, विचित्रप्रत्ययस्य विनाशः, पदप्रतिसन्धानस्य विनश्यत्तेत्येकः कालः ३ इति । एवं च पूर्वपूर्ववर्णस्मृतिनिचयसहितान्त्यवर्णानुभवस्य विनश्यदविनश्यदवस्थयोश्च स्मृत्यनुभवयोर्बलेन श्रोत्रसंस्काराभ्यां सन्नन्त्यवर्णोऽसन्तः पूर्वे वर्णास्तदवगाही स्मृत्यनुभवरूपो विचित्रः प्रत्यय एव वाक्यार्थप्रत्ययहेतुरिति । तथाच तार्किकमतं भट्टवार्तिककारेण दर्शितं—

चित्ररूपां च तां बुद्धिं सदसद्वर्णगोचराम् ।
केचिदाहुर्यथा वर्णो गृह्यतेऽन्त्यः पदे पदे ॥ इति ।

तत्र पदप्रक्रियायां पूर्वपूर्ववर्णानुभवभावितभावनाकूटस्य तज्जन्यस्मृतीनां च तावद्वर्णविषयसमूहावलम्बनस्मृतिद्वारा नार्थप्रत्यायकत्वमित्यसकृदुपपादितम् ।

वाक्यप्रक्रियापि न प्रामाणिकी । अन्त्यवर्णानुभवात्प्राचीनस्मृतिनिचयसहितादपि युगपत्स्मृत्यनुभवरूपविचित्रप्रत्ययानुत्पत्तेः । यथोक्तं श्रीवाचस्पतिमिश्रैस्तत्वबिन्दौ—‘नचान्त्यवर्णोद्बोधितसंस्काराधीनजन्मा स्मृतिरनुभवेन सह युगपदुत्पत्तुमर्हति । न च न्याय्यो युगपदुत्पादः प्रत्ययानां करणस्य प्रत्ययापर्यायेऽसामर्थ्यात्’ इति । तथाच तत्त्वबिन्दौ त एव तत्संग्रहमाहुः—

नान्त्यवर्णश्रुतिः स्मृत्यतीता वाक्यार्थबोधिनी ।
न स्मृतिस्तदपेक्षत्वाद्यौगपद्यं न चानयोः ॥ इति ।

प्राचीनस्मृतिसमयेऽन्त्यवर्णानुभवो नास्ति अनागतत्वात् अन्त्यवर्णानुभवसमये प्राचीनस्मृतिरेव नास्ति अतीतत्वादिति तस्यार्थः । द्वितीयटीकायामप्युक्तं वाचस्पतिमिश्रैः—‘अपि चेयमन्त्यवर्णश्रतिः स्वार्थसंकेतस्मृतिसापेक्षा तदनपेक्षा वार्थधियमाधत्ते । आद्ये संकेतस्मृतिकालेऽन्त्यवर्ण-

---

१ समयेति पाठः ।

श्रुतिरुपरता क्षणिकत्वेनेति कया स्मृतिरपेक्षेत । अन्त्यवर्णश्रुतिसमये च संकेतस्मृतिरनागतेति किमन्त्यवर्णप्रत्ययोऽपेक्षते । संकेतस्मृत्यनपेक्षत्वे त्वगृहीतसंकेतस्यापि प्रथमवर्णश्राविणोऽर्थप्रत्ययप्रसङ्ग इति ।

तस्मात्पदस्फोटाद्वाक्यस्फोटाद्वार्थप्रत्यय इति स्थितम् । अत एव शब्दप्रभवत्वमाख्यायते जगत इत्यन्यत्र विस्तरः ।

अत एव चागमेऽपि—

शब्दब्रह्म यदूचिरेसुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतं
तद्वोऽव्यादनिशं शशाङ्कसदनं वाचामधीशं महः ।

इत्याद्युक्तमित्यलमतिविस्तरेण ।

प्राक्तनसूक्तिमुक्तानां माला कृष्णविनिर्मिता ।
विदुषामद्विषां कण्ठे भासतामसतामपि ॥ १ ॥
क्रियाकारकभावेन यत्सर्वत्रानुभूयते ।
स प्रत्यगात्मा जयति शब्दब्रह्ममयं महः ॥ २ ॥
शब्दब्रह्माभिधं श्रीमद्भाष्यकारस्य संमतम् ।
श्रीकृष्णशेषविदुषा स्फोटतत्त्वं निरूपितम् ॥ ३ ॥
विद्वद्भिः सदसव्द्यक्तिकारिभिः सारहारिभिः ।
रागविद्वेषरहितैर्दूषितं वाऽस्तु भूषितम् ॥ ४ ॥

इति श्रीशेषकृष्णविरचितं स्फोटतत्त्वनिरूपणं संपूर्णम् ॥

स्फोटचन्द्रिका ।

पित्रोः पादयुगं नत्वा जानकीरघुनाथयोः ।
मौनिश्रीकृष्णभट्टेन तन्यते स्फोटचन्द्रिका ॥ १ ॥

शाब्दिकानां वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यार्थप्रतिपादकानां वाचकलाक्षणिकव्यञ्जकानां शब्दानां तन्निष्ठजातेर्वा स्फोट इति व्यवहारः । स्फुटति अर्थो यस्मादिति व्युत्पत्त्या पङ्कजादिपदवद्योगरूढः स्फोटशब्दः । केवलयोगस्वीकारे वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यानां चेष्टायाश्च व्यङ्ग्यार्थप्रतिपादकत्वेन तत्रातिव्याप्तेः । न च वाचकपर्यायः स्फोटशब्दोऽप्रसिद्धः । 'अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः' इति हरिवंशे दृष्टत्वात् ।

तथा च वर्णपदवाक्याखण्डपदाखण्डवाक्येति पञ्च व्यक्तिस्फोटाः । शक्यतावच्छेदिकाया जातेर्वाच्यत्ववच्छक्ततावच्छेदिकाया जातेर्वाचकत्वमिति मते वर्णपदवाक्यभेदेन त्रिविधो जातिस्फोटः । एवं चाष्टौ स्फोटाः ।

यथाऽऽनन्दवल्ल्यां शुद्धब्रह्मज्ञानार्थमन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयेति पञ्चसु कोशेषु अपारमार्थिकब्रह्मत्वप्रतिपादनमुपायः, यथा वाऽरुन्धतीज्ञानार्थं स्थूलनक्षत्रे अपारमार्थिकारुन्धतीत्वबोधनम्, तथा पारमार्थिकाखण्डवाक्यबोधार्थमेते वर्णपदवाक्याखण्डपदस्फोटा उपायाः । तदुक्तम्—

उपायाः शिक्षमाणानां बालानामुपलालनाः ।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते ॥ इति ।

'सुप्तिङन्तं पदम्' इति 'एकतिङन्तार्थमुख्यविशेष्यकं वाक्यम्' इति पदवाक्यलक्षणानाक्रान्तवर्णसमूहस्य वर्णस्य वा प्रकृतिप्रत्ययरूपस्य व्याकरणेन गृहीतशक्तिकस्य पच् तिप् इत्यादिकस्य वाचकत्वे वर्णस्फोटः । ते च प्रयोगसमवायिनः विसर्गतिबादयः, न तु तत्स्थानित्वेन कल्पिताः सकारलकारादयः, तेषामनियतत्वात् । तथाहि । विसर्गेण रोःस्मरणं तेन सोः । एवं णला तिपः स्मरणं तेन लकारस्य, एवं च गौरवं स्पष्टमेव । किं च स्थान्यादेशज्ञानशून्यस्यावैयाकरणस्यादेशमात्रादबोधापत्तेश्च । एवं च

१ ते च ।

स्थान्येव वाचको लाघवात्, न त्वादेशो गौरवादिति तार्किकोक्तमपास्तम्। विपरीतगौरवापत्तेः।

अयं तार्किकाणां पदस्फोटत्वेनाभिमतः। शक्तं पदमिति तैः स्वीकृतत्वात्। तच्च मानाभावात्फलाभावात्स्वग्रन्थविरोधाच्चायुक्तमिति शाब्दिकाः।

तथाहि। शक्तं पदं चतुर्धा—रूढं यौगिकं योगरूढं यौगिकरूढं चेति। गौः पाचकः पङ्कजमश्वकर्ण इति क्रमेणोदाहरणानि।

तत्र पाचक इति यौगिकोदाहरणे यच्छक्तं पदं पच् अक इति न तद्यौगिकं, समुदायस्तु यद्यपि यौगिकस्तथापि न शक्तः। एवं च शक्तं पदं यौगिकमित्यविचारिताभिधानम्। विशिष्टशक्त्यभावे सति व्याकरणबोधितार्थप्रकृतिप्रत्ययसमुदायरूपसुबन्ततिङन्तपदत्वं यौगिकपदत्वम्। सत्यन्तं योगरूढेऽतिव्याप्तिवारणाय। तत्र विशिष्टे शक्तिग्रहात्।

एवं गौरिति रूढयुदाहरणमप्यसङ्गतम्, व्याकरणकल्पितप्रकृतिप्रत्ययार्थप्रत्ययाभावे सति तत्समुदायसुबन्तस्यार्थबोधकत्वं[1] रूढपदत्वं, यथा मणिनूपुरादीति रूढिलक्षणानाक्रान्तत्वात्। शास्त्रकल्पितावयवार्थानुसंधानपूर्वकसमुदायशक्त्यार्थबोधकपदत्वं योगरूढत्वं, यथा पङ्कजादीति तदाक्रान्तत्वाद्योगरूढत्वं युक्तम्।

यौगिकरूढ इति तार्किकोक्तो भेदोऽपि न युक्तः। सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं प्रत्याययतीति न्यायान्मण्डपपदं गृहविशेषे रूढं भिन्नं, मण्डपानकर्तरि भिन्नमिति अतिरिक्तभेदस्वीकारे मानाभावात्।

एवं रूढिलक्षणायाः कर्मणि कुशल इत्युदाहरणमप्ययुक्तम्। उक्तरीत्या कुशले रूढत्वस्य, कुशादानकर्तरि यौगिकत्वस्य संभवात्।

द्विरेफपदं भ्रमरे रूढमेव, कोशे भ्रमरपर्यायेषूपादानात्। नहि कोशे लाक्षणिकोपादानं पर्यायेष्वस्ति। एवं च स्ववाच्यपदवाच्यत्वसंबन्धेन द्विरेफपदस्य भ्रमरे लक्षणेति तार्किकोक्तमपास्तम्। अक्रूरेऽपि उक्तसंबन्धसत्त्वेन तत्रातिव्याप्तेश्च।

यद्वा एकाक्षरकोशावधृतशक्तिकानां सर्वेषां वर्णानामेव स्फोटत्वम्, अर्थवन्तो वर्णा इत्यनेन भाष्ये तथा प्रतिपादनात्। न चैवं धनं वनमित्यादौ (प्रतिवर्णं) प्रातिपदिकसंज्ञापत्तिः। समुदायशक्तेः स्वाश्रयशक्ततावच्छेदकानुपूर्वीभङ्गजनकार्थकार्यं प्रति प्रतिबन्धकत्वात्।

---

१ बोधकत्वे इति पाठः।

यत्तु भूषणे स्फुटति अर्थो यस्मादिति स्फोटः वाचक इति यावदिति केवलयौगिकः स्फोटशब्द उक्तः । तन्न सम्यक् । साधुशब्दानामिवासाधुशब्दानामपि शक्तिसत्त्वेन वाचकत्वाविशेषात्स्फोटत्वापत्तेः । न चेष्टापत्तिः । शाब्दिकैस्तथानङ्गीकारात् । लाक्षणिकव्यञ्जकयोरसंग्रहापत्तेश्च । न च 'शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा' इति अत्रग्रहणात्काव्य एव व्यञ्जकः, न व्याकरणे इति भ्रमितव्यम् । पदेन स्फोटोऽखण्डो व्यज्यत इति वदद्भिस्तत्स्वीकारात् ।

ननु तार्किकमते ईश्वरेच्छा शक्तिः, मीमांसकमते अतिरिक्ता पदार्थान्तरं, नवीनतार्किकैरीश्वरेच्छा ज्ञानं वा कृतिर्वेति विनिगमनाविरहान्मीमांसकमतमेवाङ्गीकृतम् । उभयथापि साधुष्वेव सा नासाधुषु । अन्यथा शक्तिमत्त्वं साधुत्वम्, इति साधुत्वलक्षणाक्रान्तत्वेनासाधूनामपि साधुत्वापत्तेः । शक्तिग्राहकव्याकरणकोशादेरभावाच्चेति चेन्न । तत्र शक्त्यभावे तेभ्यो बोधानापत्तेः ।

न च शक्तिभ्रमात्साधुशब्दस्मरणाद्वा बोध इति तार्किकोक्तं युक्तम् । साधुशब्दस्मरणं विनापि व्युत्पन्नानामपि बोधस्यानुभवसिद्धत्वात्, गौरवाच्च ।

भ्रमाद्बोध इत्यपि न । रजतभ्रमाद्गृहीतायाः शुक्ते रजतव्यवहारानाधायकत्ववच्छक्तिभ्रमाज्जातस्यापि बोधस्य व्यवहारानाधायकत्वापत्तेः । सन्मात्रविषयिण्या ईश्वरेच्छायास्तत्र अभावस्य वक्तुमशक्यत्वाच्च । किंच शक्तिभ्रमः कस्य, सर्वव्यवहारकर्तुरीश्वरस्योतान्यस्य । नाद्यः । ईश्वरस्य भ्रमित्वानुपपत्तेः । नान्त्यः । सर्गादौ प्रयोज्यप्रयोजकस्वरूपसाध्वसाधुशब्दव्यवहारकर्त्रीश्वरादन्यस्याभावात् । यथा पुण्यपापोभयजनिकार्थसृष्टिरीश्वरकर्तृका तथैव साध्वसाधूभयविधशब्दसृष्टिरपीश्वरकर्तृकैव । तथा च भ्रम इति अयुक्तमेव । न च तटस्थबालस्यानुमितिभ्रमः, साधुशब्देष्विवासाधुशब्देष्वपि शक्त्यनुमापकसामग्रीसत्त्वेन बाधकाभावेन च भ्रमत्वायोगात् ।

नन्वसाधुशब्देष्वपि शक्तिस्वीकारे शक्तिमत्त्वं साधुत्वमिति तार्किकलक्षणाक्रान्तत्वात्साधुत्वापत्तिः । तथा च न म्लेच्छितवै नापभाषितवै इति निषेधानवकाश इति चेन्न । लाक्षणिकानामसाधुतापत्तेः । न च वृत्तिमत्त्वं तत् । शक्तिलक्षणान्यतरत्वनिवेशे गौरवात् । तस्मात्पुण्यजनकतावच्छेदकजातिविशेषः साधुत्वं प्रत्यवायजनकतावच्छेदकश्चासाधुत्वम् ।

यद्वा व्याकरणबोध्यत्वं साधुत्वं तद्भिन्नत्वमसाधुत्वम् । तथा च 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति' इति

व्याकरणेनार्थविशेषे प्रकृतिप्रत्ययेन व्युत्पादित इति ज्ञातः। तादृशार्थविशेषे प्रयुक्तः। तेन गोणीशब्दस्य गोण्यामेव साधुत्वं न गवि। विनिगमनाविरह इत्यपि न युक्तम्। अन्यतरपक्षपातिनी युक्तिर्हि विनिगमना सा च ज्ञानस्य पूर्वाभिव्यक्तिरूपा प्रकृतेऽस्ति। अत एवेश्वरज्ञानं शक्तिरिति वर्धमानोपाध्यायाः।

शाब्दिकास्तु बोधजनकत्वं शक्तिः। तच्चानादिबोधजनकतावच्छेदकधर्मवत्त्वम्। तदुक्तं हरिणा—

इन्द्रियाणां स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा।
अनादिरर्थैः संबन्धः शब्दानां योग्यता तथा॥ इति।

तज्जनकतावच्छेदकधर्मवत्त्वरूपा योग्यता। न चागृहीतशक्तिकस्य शाब्दबोधानुदयाच्छाब्दबोधे शक्तिग्रहस्य हेतुत्वाद् बोधोत्तरं शक्तिग्रहः शक्तिग्रहोतरं बोध इति अन्योन्याश्रयः। व्याकरणकोशादिना शक्तिग्रहात्। अन्यथेश्वरेच्छाशक्तिरिति पक्षेऽपि शक्तिग्रहोतरं बोधः बोधोत्तरं शक्तिग्रह इति अन्योन्याश्रयस्य तुल्यत्वात्।

यद्वा शब्दार्थयोरनादिसंबन्धः शक्तिः। मम तु प्रतिभाति शक्तिः सामर्थ्यं यथा दीपादौ तेजसि ग्राह्यत्वग्राहकत्वसामर्थ्यं वह्न्यादौ दाहकत्वसामर्थ्यमिन्द्रियादौ विषयप्रकाशनं, तत्स्वरूपसदेवोपयुज्यते न तु ज्ञातम्। एवं शब्देऽपि ग्राह्यत्वग्राहकत्वसामर्थ्यं स्वरूपसदेवोपयुक्तं न तु ज्ञातम्। न चागृहीतशक्तिकस्यापि बोधापत्तिः। सन्निकर्षादिवद्बोधाभावप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगितात्पर्यग्रहाभावात्। ननु नानार्थेष्वेव तात्पर्यग्रहस्य कारणत्वमिति चेत्। सत्यम्। शाब्दिकमते सर्वेषां नानार्थत्वात्। अत एव वृद्धिरादैजिति सूत्रे भाष्येऽनेकशक्तेः शब्दस्येत्युक्तम्। अनेकेष्वनेका वा शक्तिरस्येति विग्रहः।

अवच्छेदकभेदे शक्तिभेद इति तार्किकादिसिद्धान्तः। लाघवाच्छक्तिरेकैवेति शाब्दिकराद्धान्तः। न चान्यायश्चानेकार्थत्वमिति वाच्यम्। भवन्मतेऽपि तुल्यत्वात्।

एतावान् परं भेदः—त्वन्मते वृत्तिभेदेन, मन्मते तु एकया वृत्त्या। न च लक्षणोच्छेदापत्तिः। इष्टत्वात्। यथा भवद्भिः सर्वानुभवसिद्धापि व्यञ्जना लाघवान्न स्वीक्रियते। तत्र च व्यञ्जनोच्छेदापत्तेरदूषकत्ववन्मन्मतेऽपि लाघवाच्छक्त्यैव निर्वाहे लक्षणोच्छेदापत्तेरदूषकत्वात्।

---

१ जानाति इच्छति यतते करोतीत्येवं क्रमेणानुभवादिति भावः।

वस्तुत एकवृत्त्यैव निर्वाहे अनेकवृत्तिकल्पनमन्याय्यमित्येव तदर्थः । अर्थपदस्य वृत्तिपरत्वात् । अन्यायश्चेत्यस्य लाघवमूलकत्वात् ।

न चानन्यलभ्यः शब्दार्थ इति वाच्यम् । तस्य लक्षणया लभ्ये शक्तिकल्पनमन्याय्यमिति नार्थः, किंतु संसर्गमर्यादया सिद्धे शक्तिकल्पनमयुक्तमिति तदर्थात् । एवं च शाब्दिकानां शब्दवद्वह्नौ अतिरिक्तशक्तिस्वीकारः । तार्किकाणां तु शब्दे शक्तिस्वीकारः वह्नौ तु नेत्यर्धजरतीयस्वीकारोऽनुचितः । न चोत्तेजकाभावविशिष्टमण्यभावेनोपपत्तौ तत्स्वीकारो व्यर्थ इति वाच्यम् । गुरुभूतविशिष्टस्य कारणताच्छेदकत्वस्वीकारापेक्षया लघुभूतस्वीकृतातिरिक्तशक्तिसंबन्धस्यैवोचितत्वात् ।

किंच शाब्दिकमते भेदसहिष्णुरभेदस्तादात्म्यम् । गुणत्वद्रव्यत्वादिना भेदेऽपि गुणं विना द्रव्यानुपलम्भाद्द्रव्यं विना गुणानुपलम्भाच्च तयोस्तादात्म्यम् । एवं च समवायो यत्र तत्र तादात्म्यमिति व्यवहारः । तथा च तैः गुणं प्रति घटस्य पूर्ववर्तित्वासंभवेन कारणत्वाभावादन्यथानुपपत्त्या विशिष्टस्यैव कारणतावच्छेदकत्वमङ्गीकृत्य गुणविशिष्टघटं प्रति गुणविशिष्टकपालस्य कारणत्वमिति स्वीकृतम् । तार्किकैस्तु विशिष्टस्य कारणतानवच्छेदकत्वाद्विशिष्टस्य कारणत्वासंभवान्निर्गुणघटोत्पत्तिः स्वीकृता, तत्र च गुणाश्रयत्वरूपद्रव्यत्वलक्षणानाक्रान्तत्वाद्गुणसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमिति निष्कर्षः कृतः सोऽयुक्त इति मम प्रतिभाति ।

तथाहि । प्रतिबन्धकोत्तेजकाभ्यां वह्नौ ज्ञातापि शक्तिरुत्तेजकाभावविशिष्टमण्यभावस्य कारणत्वं स्वीकृत्यातिरिक्ता शक्तिः खण्डिता, शब्दे च सा स्वीकृता । एवं विशिष्टस्य तत्र अवच्छेदकत्वं स्वीकृत्येह नेत्युक्त्वा खपुष्पवन्निर्गुणघटोत्पत्तिः स्वीकृता । सर्वेषामनुभवानारूढत्वादेतत्सर्वमयोग्यमिति दिक् ।

शाब्दिकैस्तु शब्दवद्वह्नौ कर्णविवरवर्तिनभसि चातिरिक्ता शक्तिः स्वीकृता सैव श्रोत्रं शक्तिविशिष्टं नभो वा । एवं च दूरस्थभेरीशब्दस्य स्वस्थानस्थितस्यैव श्रोत्रस्य दीपवत्प्रकाशनसामर्थ्यम् । एवं च वीचीतरङ्गन्यायेन भेरीशब्दस्य श्रवणदेशागमनमिति न मनोरमम् । साक्षाद्भेरीशब्दं शृणोमीत्यनुभवापलापापत्तेः । अनेकशब्दकल्पने गौरवाच्च । न च श्रोत्रमेव तत्र गच्छतीति युक्तम् । आकाशस्य गमनासंभवात् । कर्णविवरे आकाशाभावप्रसङ्गाच्च । श्रोत्रेन्द्रियं गुणमात्रसाक्षात्कारजनकम् ।

केचित्तु श्रोत्रेन्द्रियवद्रसनेन्द्रियघ्राणेन्द्रिययोरपि गुणमात्रसाक्षात्कारजनकत्वमिति वदन्ति । तद्युक्तमित्यपरे । तथाहि । शब्दस्याकाशगुणत्वात्समवायेन साक्षात्संबन्धसत्त्वेन केवलप्रत्यक्षसंभवेऽपि रसगन्धयोस्तु संयुक्तसमवायः संनिकर्षः स च द्रव्यसंबन्धे घटत इति परम्परासंबन्धः । तत्र द्रव्यसाक्षात्कारसंन्निकर्षसत्त्वेन द्रव्यं विना केवलगुणस्यासत्त्वेन च केवलगुणसाक्षात्कारासंभवः । तस्माद्द्रव्यविशिष्टगुणसाक्षात्कारजनकत्वं तयोः, न तु गुणविशिष्टद्रव्यसाक्षात्कारजनकत्वम् । अनुभवेन तथैव शक्त्युन्नयनात् । चक्षुरिन्द्रियत्वगिन्द्रिययोस्तु गुणविशिष्टद्रव्यं द्रव्यविशिष्टो वा गुण इत्युभयविधसाक्षात्कारजनकत्वम् । विस्तरस्तु मत्कृतशब्दार्थतर्कामृते द्रष्टव्यः । गौरवभयान्नेह तन्यत इति दिक् ।

प्रकृतमनुसरामः । असाधुशब्दस्य वाचकत्वेऽपि व्याकरणप्रतिपाद्यत्वाभावात्स्फोटत्वाभावः । तदन्तर्गतवर्णानां तु एकाक्षरकोशावधृतशक्तिकानामर्थान्तरप्रकाशकत्वे पदस्फोट इति पदस्फोटे विवेचयिष्यते । अनुकरणशब्दानां तु अनुकार्यानुकरणयोर्भेदविवक्षयाऽनुकार्यरूपार्थप्रतिपादकत्वात् स्फोटत्वम् । ननु साध्वनुकरणस्य साधुत्वेन स्फोटत्वेऽप्यसाध्वनुकरणस्यासाधुत्वात्कथं स्फोटव्यवहार इति चेन्न । असाध्वनुकरणस्यापि साधुत्वस्वीकारात् । दैत्यैर्हेऽरय इति प्रयोक्तव्ये हेऽलय इति प्रयुक्तं, तदनुकरणं हेलयो हेलय इति कुर्वन्तो न[1] पराबभूवुरिति वाक्येऽपि न तस्यासाधुत्वम् । तथा यद्वा नः तद्वा नः भवतु इत्यर्थे यर्वाणस्तर्वाणः भवतु इति प्रयुक्तं तदनुकरणं कुर्वन्तो यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो बभूवुरिति वाक्येऽपि तस्यासाधुत्वं न कस्यापि संमतम् । तस्मादसाधोरनुकरणस्य साधुत्वं सर्वसंमतम् । तत्र यदा तयोरभेदविवक्षा तदार्थप्रकाशकत्वाभावान्न स्फोटत्वम् । शुद्धब्रह्मज्ञानाय सर्वबहिर्भूतान्नमयकोशवदखण्डवाक्यबोधनाय वर्णस्फोट इति दिक् ।

इति वर्णस्फोटः ।

अथ पदस्फोटो वर्णस्फोटापेक्षया अन्नमयकोशापेक्षयान्तरङ्गप्राणमयकोशवदन्तरङ्गो निरूप्यते । अन्तरङ्गत्वं तु साक्षाद्वाक्यघटकत्वेन । वर्णस्य बहिरङ्गत्वं पदनिष्पत्तिद्वारा तद्घटकत्वम् । पदस्फोटो द्विधा सखण्डोऽखण्डश्च । व्यवहारादिना पदे एव शक्तिग्रहात् । तत्र योऽस्माकं सख-

---

१ कुर्वन्तः पराबभूवुरिति वाक्येऽपि तस्य साधुत्वमिति पाठः ।

ण्डपदस्फोटः पचति राम इत्यादिसुबन्ततिङन्तरूपः, शक्तं पदमिति मते स एव वाक्यस्फोटस्तार्किकाणाम् ।

अथाखण्डपदस्फोटो निरूप्यते । स च सर्वैः पदस्थितवर्णैर्व्यज्यते । स चार्थप्रत्यायक इति शाब्दिकसिद्धान्तः । न च प्रतीतस्य प्रत्यायकत्वं नास्ति अन्यथा शब्दं वेत्तीत्यत्रार्थं वेत्तीति प्रत्ययापत्तेरिति अणुदित्सूत्रस्थभाष्यविरोधः । तस्य सामान्यतः प्रतीतस्य प्रत्यायकत्वं नास्तीति नार्थः किंतु शब्दसंज्ञया प्रतीतस्य शब्दस्येति । प्रकरणानुरोधेन तस्य संकोचात् । एवं च रहसि पुस्तकमीक्षमाणस्यार्थप्रत्ययानापत्तिमाशङ्क्य तत्रापि सूक्ष्मोच्चारणमस्त्येवेति नव्योक्तमपास्तम् । अनुभवविरोधाच्च ।

यत्त्वत्र तार्किकवेदान्तिनः । यावद्वर्णव्यङ्ग्यो वा यत्किंचिद्वर्णव्यङ्ग्यो वा चरमवर्णव्यङ्ग्यो वा सः । न तावदाद्यः । आशुविनाशिनां मेलनासंभवात् । न द्वितीयः । पशब्देनैव व्यञ्जिते स्फोटे टवर्णवैयर्थ्यम् । न तृतीयः । पूर्वपूर्ववर्णानुभजन्यसंस्कारसहितचरमवर्णेनैवार्थप्रतीतिसिद्धौ किं स्फोटेनेति । तन्न ।

वर्णानामाशुविनाशित्वे मानाभावात् । न चोत्पन्नो गकारः नष्टो गकार इति प्रतीतिर्मानम् । तस्माद्वाकाशः संभूत इतिवदाविर्भावतिरोभावेनाप्युपपत्तेः । अनन्तप्रागभावध्वंसकल्पने गौरवाच्च । अनित्यत्वेऽपि वर्णानुभवजन्यसंस्कारजन्यस्मृतौ मेलनसंभवात् ।

द्वितीयमपि न द्वितीयादिवर्णवैयर्थ्यम् । पशब्दोच्चारणे किं पटस्फोट उत पद्मस्फोट उत पयःस्फोट इति संदेहनिवर्तकत्वेन सार्थक्यात् ।

तृतीये यथा पटपदशक्यः विजातीयतन्तुसंयोगविशिष्टचरमसंयोगस्यैव पटकार्यकारित्वेऽपि अतिरिक्तोऽवयवी स्वीक्रियते तथा मयापि स्वीक्रियते । न च तथानुभवादतिरिक्तः पट इत्युच्यते । पदस्फोटेऽपि तुल्यत्वात् । गौरवाच्च ।

स्फोटे तु लाघवं कथमिति चेच्छृणु । ध्वनिभिरेव स्फोटो व्यज्यते । एवंचानन्तवर्णतत्प्रागभावध्वंसकल्पना नदी दीन सरो रस जरा राजेत्यादौ भिन्नार्थप्रतीत्यर्थमानुपूर्व्याः पूर्ववर्णानुभवजन्यसंस्कारसहितचरमवर्णस्य कारणता च न वाच्येत्यतिलाघवम् । त्वया तु तद्वाच्यमिति गौरवम् । एतावत्प्रघट्टकेन वर्णातिरिक्तः वर्णव्यङ्ग्यः 'चैतन्ये सर्वभूतानां शब्द-

१ क्रचं वेति ।

ब्रह्मेति मे मतिः' इति शब्दब्रह्मरूपोऽतिरिक्तः स्फोटस्तार्किकादिदूषणाभासनिरसनपूर्वको व्याख्यातः ।

प्रकारान्तरेणाप्युच्यते। अखण्डपदस्फोटो नाऽतिरिक्तः । यत्र तार्किकादिभिर्यौगिकं योगरूढं च पदमित्युच्यते पाचकः पङ्कजमित्यादि तदेवास्माभिः सखण्डपदस्फोटत्वेन व्यवह्रियते। खण्डशक्त्यनुसंधानपूर्वकं कोशादिना समुदायशक्तिग्रहात्। यस्य तु व्याकरणज्ञानशून्यस्य केवलव्यवहारेण समुदायशक्तिग्रहस्तस्य स एवाखण्डपदस्फोटः ।

यत्तु रूढं पदं मणिनूपुरादि वः न इत्यादि तत्सर्वेषामपि अखण्डपदस्फोटत्वेनाभिमतम् । तत्र सर्वेषामपि अवयवार्थज्ञानाभावविशिष्टव्यवहारेण समुदाये शक्तिग्रहात्। एवंच रूढयौगिकपदयोः सखण्डाखण्डस्फोटयोश्च पर्यायत्वे नाममात्रे विवाद इति दिक् ।

एवंच तार्किकादीनां दूषणाभासा गर्भस्रावेणैव पराहता इति दिक् ।

नहि तार्किकादितर्का एव सत्तर्का इति नियमः । तत्रापि बहुशोऽनुभवाविषयासत्तर्कदर्शनात्। तथाहि । विशिष्टस्य कार्यत्वकारणत्वेनैव सिद्धौ निर्गुणघटोत्पत्तिरयुक्तेति पूर्वमुक्तम्। तथा रूपस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमाद्घटस्य प्रत्यक्षान्यथानुपपत्त्या स्वीक्रियमाणातिरिक्तं चित्रं रूपमिति कल्पनाप्ययुक्तैव । तादृशनियमे प्रमाणाभावात्। अस्तु वा नियमः । तथापि तत्तद्रूपावच्छिन्नतत्तदवयवसंनिकर्षसहितचरमरूपावच्छिन्नचरमावयवसन्निकर्षेणैव घटसाक्षात्कारसिद्धौ अतिरिक्तचित्ररूपस्वीकारे गौरवात्। एवं विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानस्य कारणत्वात्तस्य चायं घट इत्यादावसंभवाद् घटघटत्वयोः संबन्धानवगाहि निर्विकल्पकज्ञानकल्पनाप्ययोग्यत्वादयुक्तैव। नित्यसंबन्धातिरिक्तसंयोगसंबन्धादावेव तत्कल्पना दण्डीपुरुष इत्यादौ, न तु अयं घट इत्यादौ। तत्र विशिष्टज्ञानस्यैव जायमानत्वात्। एवंच निर्विकल्पकज्ञानं न स्वीकार्यमिति महल्लाघवम् । एवमखण्डसखण्डभेदेन कालद्वैविध्यकल्पनमप्ययुक्तमेव। अखण्डस्य व्यवहारानाधायकत्वात्। न च 'जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः' इति जगदाधारत्वेन जनकत्वेन च तत्स्वीकारः। ईश्वरस्यैव तत्प्रसिद्धत्वात्। न च पदार्थखण्डने दिक्कालौ नेश्वरादतिरिच्येते इत्यादिनाऽस्माभिस्तदुक्तमिति वाच्यम्। तत्र दिक्कालयोरेव विशिष्येश्वराभेद उक्तः। स च सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतिविरुद्धः। तथा यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितमित्यादिश्रुतिभिर्जगत्कर्तृत्वं जगदाधारकत्वं चेश्वरस्यैव न तु कालस्य। तेन जन्यानां

जनकः काल इत्यस्य पृथिव्यादिसप्तपदार्थानामपीश्वराभेदेन विशिष्योभयोरेव तद्भेदप्रतिपादनस्य चायुक्तत्वात् । एवं खण्डकालोऽप्ययुक्तः । सूर्यगतिविशेषरूपोपाधिभेदेन हि खण्डकालः । एवंच सूर्यगतिविशेषस्यैवास्तु खण्डकालत्वं किं तदतिरेकेण । तथा च खण्डकालस्य क्रियात्वम् । एवं पीलुपाकवादिभिः परमाणौ पाकं स्वीकृत्य श्यामघटनाशः रक्तघटोत्पत्तिः स्वीकृता, तत्र चक्रदण्डादिनिमित्तकारणाभावात्कथमुत्पत्तिः । निमित्तकारणं विनापि तत्स्वीकारे दण्डचक्रादीनां निमित्तकारणतैवोच्छिद्येत । एवंविधानेकानुभवानारूढगुरुभूततर्काश्रयणं लाघवमूलातिरिक्ताखण्डस्फोटखण्डनं दूषणाभासैरनुचितमिति दिक् ।

वाक्यार्थज्ञानं प्रति पदार्थज्ञानस्य कारणत्वात्पदस्फोटं निरूप्य वाक्यस्फोटो निरूप्यते । स चाखण्डसखण्डभेदेन द्विधा । तत्राखण्डः पदातिरिक्तोऽखण्डपदव्यङ्ग्यो लाघवात्स्वीक्रियते । तच्चाखण्डपदस्फोटे निरूपितम् । अन्यच्चाकाङ्क्षायोग्यतासत्तीनां कारणता न वाच्येति महल्लाघवम् । सखण्डस्तु प्रसिद्ध एव ।

यद्वा हरेऽवेत्यादौ एकादेशे कृते पदविभागो दुर्वारस्तत्राखण्डवाक्यस्फोटोऽन्यत्र सखण्ड इति विवेकः । एवंच दूषणानां गर्भस्राव एव ।

तत्र वाक्यं नामैकतिङन्तार्थमुख्यविशेष्यकम् । यथा पचति भवतीति । तत्रापि पचतीत्यस्य विशेष्यत्वेऽपि मुख्यविशेष्यत्वाभावान्नाव्याप्तिः । तार्किकैस्तु पूर्वापरग्रन्थैकवाक्यताप्रतिपत्तये 'अर्थैक्यादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात्' इति मीमांसासूत्रमुपन्यस्य विशेष्यभूतभावनैकत्वादिति अर्थैकत्वादित्यस्य तेषामर्थं त्यक्त्वा तात्पर्यविषयैक्यमिति स्वयं तदर्थं व्याख्याय प्रत्यक्षानुमानयोरेकवाक्यत्वमुक्तम् ।

स्वातन्त्र्ये(ण?) यद्यत्सङ्गतिमत्तत्तदेकं (तत्तेन सहैकं ?)वाक्यमिति वक्तव्यं न तु यत्किंचिदर्थकल्पनमुचितं दोषदुष्टं च । तथाहि । पठनतात्पर्ये यथैव देवदत्तः पठति तव पुत्रस्तथैव पठतीत्यत्राप्येकवाक्यत्वापत्तिः । न चेष्टापत्तिः । समानवाक्यत्वात्तेआदेशापत्तेः । तथा स्योनं ते सदनं करोमि घृतस्य धारया सुषेवं कल्पयामीति सदनप्रतिपादको मन्त्रः प्रत्यक्षग्रन्थवत् । तस्मिन्सीदामृतेप्रातितिष्ठ व्रीहीणां मेधसुमनस्यमान इति सादनप्रतिपादको मन्त्रः अनुमानग्रन्थवत् । प्रमाणनिरूपणवद्यागाङ्गनिरूपणं तात्पर्यविषयः । एवमनुमानस्य प्रत्यक्षापेक्षत्वेऽपि प्रत्यक्षस्य तदनपेक्षत्ववत् सादनप्रतिपादकमन्त्रस्य सदनप्रतिपादकापेक्षत्वेऽपि सदनप्रतिपादकस्य न तदपेक्ष-

त्वम् । एवं चानयोरप्येकवाक्यत्वापत्तिः । न चेष्टापत्तिः । अर्थैक्यादित्यस्य भवदुक्तप्रत्युदाहरणविरोधात् ।

किं चेयं पदैकवाक्यता उत वाक्यैकवाक्यता उत ग्रन्थैकवाक्यता । नाद्यः । क्रियाकारकाणामेव तत्संभवात् । तयोरेव परस्परमाकाङ्क्षासंभवात् । उभयाकाङ्क्षायामेव तत्संभवेनान्यतराकाङ्क्षायां तदसंभवाच्च । न द्वितीयः । इतरनिरपेक्षतया सिद्धेनैकवाक्येन सापेक्षेतरवाक्यस्यान्वये हि सा । प्रकृते च वाक्यसंदर्भरूपग्रन्थयोरेव सा न तु वाक्ययोः । अनुमानस्थितवाक्यानां परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिरित्यादीनां प्रत्यक्षवाक्याकाङ्क्षाभावात् । आसत्त्यभावाच्च । किं च वाक्यैकवाक्यता हि प्रकरणम् । अन्यतराकाङ्क्षाप्रकरणमिति तल्लक्षणात् । तस्याप्येकवाक्यत्वस्वीकारे वाक्यात्प्रकरणस्य दुर्बलत्वप्रतिपादकश्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणेत्यादिबलाबलाधिकरणविरोधः । न तृतीयः । प्रत्यक्षानुमानयोराकाङ्क्षा आर्थी न तु शाब्दी । तस्मादत्र सूत्रलिखनं यत्किंचिदर्थकल्पनमनुचितम् । शिरोमणिग्रन्थस्तु यद्यत्सङ्गतिमत्तत्तदेकवाक्यमित्यनेनैव सिद्धत्वादिति दिक् ।

प्रकृतमनुसरामः । व्यवहारेण वाक्ये शक्तिग्रहाद्वाक्यस्यैव वाचकत्वाद्वाक्यस्फोटः । न च पूर्वं गृहीतापि वाक्ये शक्तिरावापोद्वापाभ्यां त्यक्त्वा पदे गृह्यत इति वाच्यम्, एवं सति पदार्थज्ञानं प्रति वाक्यार्थज्ञानस्य हेतुतापत्तौ वाक्यार्थज्ञानं प्रति पदार्थज्ञानस्य हेतुत्वमिति सर्वसिद्धान्तभङ्गापत्तेः । वाक्यस्फोटो द्विधा सखण्डोऽखण्डश्च । अखण्डो द्विधा । वर्णातिरिक्तोऽनतिरिक्तश्च । यदा वर्णा न स्वीक्रियन्ते गौरवात्, लाघवात् ध्वनिभिरेवाखण्डो वाक्यस्फोटो व्यज्यते इति मतं, तदातिरिक्तः । अस्मिन्पक्षे वर्णाभावेन यावद्वर्णव्यङ्ग्य इत्यादिदूषणाभासा गर्भस्रावेणैव पराहताः । यदा तु ध्वनिभिर्वर्णा व्यज्यन्त इति मतं तदा घटमानयेति सखण्डवाक्यस्फोटः । क्रियाकारकयोर्विभागस्य कर्तुं शक्यत्वात् । हरेऽव विष्णोऽवेत्यादौ एकादेशे कृते प्रातिपदिकाख्यातयोर्विभागाशक्यतयानतिरिक्तः वाक्यस्फोटः । क्रियाकारकज्ञानशून्यस्यावैयाकरणस्य घटमानयेत्ययमपि अनतिरिक्ताखण्डवाक्यस्फोट एव ।

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्ववयवा न च ।
वाक्यात्पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन ॥

इत्ययमखण्डातिरिक्तवाक्यस्फोटप्रकाशः । यथा वर्णे अवयवा न सन्ति तथेत्यर्थः । पश्य मृगो धावति, पचति भवतीत्यादावपि अखण्डसखण्डातिरिक्तानतिरिक्तत्वं पूर्ववदेव बोद्धव्यम् । मृगकर्तृकवर्तमानधावनक्रियायाः दृशिक्रियायां कर्मतासंबन्धेनान्वयः । देवदत्तकर्तृकपचिक्रियाया वर्तमानभवनक्रियायामन्वयः । तदुक्तम्—

सुबन्तं हि यथानेकं तिङन्तस्य विशेषणम् ।
तथा तिङन्तमप्याहुस्तिङन्तस्य विशेषणम् ॥ इति ।

यत्तु धावनानुकूलकृतिमान् मृग इति प्रथमान्तविशेष्यकशाब्दबोध इतिपक्षे मृगस्य दृशिधात्वर्थनिरूपितकर्मत्वाद्वितीयापत्तिः । तमित्यध्याहारे च वाक्यभेदापत्तिरित्याशङ्क्य—

पश्य लक्ष्मण पम्पायां बकः परमधार्मिकः ।

इत्यादाविव वाक्यार्थस्य कर्मत्वान्न वाक्यभेद इति कैश्चित्समाहितं तन्मुधैव । अन्तरङ्गधावनक्रियानिरूपितत्वान्मृगस्य कर्तृत्वात्तस्य चाख्यातेनोक्तत्वात्प्रथमोत्पत्तौ बहिर्भूतदृशिधात्वर्थनिरूपितकर्मत्वेऽपि अन्तरङ्गत्वाज्जातसंस्कारबाधे मानाभावेनैव, शक्यं च श्वमांसादिभिः क्षुदुपहन्तुमितिवदुपपत्तेः ।

एवं चात्र प्रथमान्तविशेष्यकपक्षेऽपि शाब्दिकदूषणाभावेऽपि एकदेवदत्तकर्तृकपचिक्रियाकर्तृकं भवनमित्यर्थे पचतिभवतीत्येकवाक्यतानापत्तेः । न च पाकानुकूलकृतिमान्देवदत्तो भवतीत्यर्थे निष्पन्ने 'सविशेषणे विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्ये बाधे' इति न्यायेन क्रियाया एव कर्तृत्वं भविष्यति । एकवाक्यतायां फलाभावाच्च । न च 'समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः' इति निघातः फलम् । 'तिङ्ङतिङः' इति अतिङ्ग्रहणेन तदभावात् । सत्यम् । त्वत्संबन्धिनी देवदत्तकर्तृका पचिक्रिया भवतीत्यर्थे देवदत्तः पचति ते भवतीति प्रयोगे समानवाक्यत्वाभावेनादेशानापत्तेः । अनेकदेवदत्तकर्तृकैका पचिक्रियेत्यर्थे देवदत्ताः पचन्ति भवतीति प्रयोगोऽपि न स्यात् । अनेककर्तृत्वेन भवतीत्यत्र बहुवचनापत्तेः । पश्य मृगो धावतीत्यत्र निघातरूपप्रयोजनसत्त्वाच्च ।

किंचात्र वाक्यार्थस्य कर्मत्वमिति तार्किकोक्तं न युक्तिमत् । तथाहि । वाक्यार्थोऽतिरिक्तोऽनतिरिक्तो वा । नाद्यः । तस्य वृत्त्यनुपस्थापितत्वेन दृशिक्रियायां कर्मतयान्वयानुपपत्तेः । वृत्त्युपस्थापितस्यैव शाब्दबोधविषय-

त्वनियमात्। अन्यथा घटपदात्समवायेनोपस्थिताकाशस्यापि शाब्दबोधविषयत्वापत्तेः। न द्वितीयः। विभक्त्यर्थमद्वारीकृत्य नामार्थस्य धात्वर्थेन समं भेदसंबन्धेनान्वयोऽव्युत्पन्नः। अन्यथौदनः पचतीत्यापत्तेः। न च तत्र वाक्यार्थस्य कर्मत्वं न नामार्थस्येति वाच्यम्। रमणीय ओदनः पचतीत्यस्याप्यापत्तेः। पश्य लक्ष्मण पम्पायामित्यादौ तमिति पदाध्याहारेण वाक्यभेद एव। एवं च वाक्यार्थस्य कर्मत्वमित्यविचारिताभिधानम्।

एवं नीलो घटो भवतीति वाक्ये नीलकर्तृकभवनाश्रयो घट इति व्युत्पत्तिवादोक्तमपि न युक्तिमत्। नामार्थस्येत्यादिव्युत्पत्तिबाधे मानाभावात्। नीलो घटो भवनाश्रय इति बोधसंभवाच्च। 'सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्ये बाधे' इति विशेषणे नीले एव भवनस्यान्वयो भविष्यतीति दिक्।

एवं तत्त्वमसि, सोऽयं देवदत्त इत्यादौ सखण्डाखण्डत्वं पूर्ववदेव बोध्यम्। तत्त्वमसीत्यत्र तत्पदवाच्यसर्वज्ञत्वादिविशिष्टचैतन्यस्य त्वंपदवाच्येनान्तःकरणविशिष्टचैतन्येनैक्यासंभवादैक्यसिद्ध्यर्थं स्वरूपे जहदजहल्लक्षणेति सांप्रदायिकाः।

नन्वनयोरैक्ये किं मानम्। न च नामार्थेति व्युत्पत्तिः। तस्याः किं नामार्थयोरेवाभेदान्वय उत नामार्थयोरभेद एवेति। नाद्यः। स्तोकं पचति वैश्वदेवी आमिक्षेत्यादौ व्यभिचारात्। नान्त्यः। घटपटौ इत्यादौ व्यभिचारात्। तस्मात्संभवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्यमन्याय्यमिति लाघवमूलको हि सः।

सत्यम् 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इति भेदनिन्दापूर्वकाभेदप्रतिपादकश्रुतिर्मानम्। न च तत्रापि यः नाना इव पश्यति स मृत्योर्मृत्युमाप्नोति यस्तु वस्तुतः नानात्वं पश्यति स नेतीतीवशब्दात्प्रतीयमानार्थेन भेदस्यैव प्रतीतेः। किंच राजपुरुष इत्यत्रेव तस्य त्वमिति षष्ठीसमासेनापि भेदस्यैव प्रतीतेरिति वाच्यम्। छान्दोग्येपि 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्यारभ्य तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इत्युपसंहारेणोपक्रमोपसंहारयोरेकरूपेण वेदतात्पर्यनिर्णायकेनैक्यस्य निर्णीतत्वात्। 'ब्रह्म तं परादाद्योन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद' इति श्रुत्यापि ऐक्यावधारणात्। अस्मिन्पक्षे लाक्षणिकवाक्यस्फोटः।

वस्तुतस्तु अयं वाचकवाक्यस्फोट एव। तथाहि। विशिष्टशक्त्युपस्थापितयोस्तत्त्वंपदार्थयोरभेदान्वयानुपपत्तावपि विशेष्ययोः शक्त्युपस्थापितयोर-

भेदान्वये बाधकाभावः । यथा घटोऽनित्य इत्यत्र घटपदवाच्यैकदेशघटत्वस्यायोग्यत्वेऽपि योग्यघटव्यक्त्या सहानित्यत्वान्वयः। यद्वा विशेष्य एव शक्तिः विशेषणं तूपलक्षणम् । अस्मिन्पक्षे न कोऽपि दोषः ।

यद्वा यथा नानार्थस्थले संयोगादिनाभिधानियमनं तथाभेदान्वयानुरोधाद्विशेष्ये एवाभिधानियमनम् । अस्तु वा लक्षणा सा च जहल्लक्षणा । तया च विशेषणांशत्यागमात्रं न तु विशेष्येऽपि तस्या उपयोगः। शक्त्यैव तदुपस्थितिसंभवात् एवं सोयं देवदत्त इत्यत्रापि । तथा च जहदजहल्लक्षणोदाहरणमसंगतमिति दिक् ।

एवमेको वृक्षः पञ्च नौका भवन्तीति वाक्ये सखण्डाखण्डत्वे पूर्ववदेव बोध्ये ।

अत्र तार्किकाः—

गृह्णाति वाचकः सङ्ख्यां प्रकृतेर्विकृतेर्नहि ।

इति वचनात्प्रकृत्यर्थवृक्षगतमेकवचनमेव भूधातूत्तरं भवतीत्याहुः ।

तदयुक्तम् । गृह्णातीत्यस्य च्व्यन्तविषयत्वात्। यथा संघीभवन्ति ब्राह्मणाः त्वद्भवाम्यहं मद्भवसि त्वमित्यादौ वचनपुरुषयोः प्रकृतिगतयोरेव दर्शनात् । ननु संकोचे किं मानम् । सुवर्णपिण्डः खदिराङ्गारसदृशे कुण्डले भवत इति भाष्यप्रयोग एव । उद्देश्यविधेयभावस्थले तु उद्देश्यगता सङ्ख्याऽऽख्यातप्रत्यये 'शास्त्राणि चेत्प्रमाणं स्युः' इत्यादिषु ।

पुनरपि वाक्यं द्विधा । काव्यात्मकमकाव्यात्मकं च । द्वितीयं तूक्तम् । आद्यंतु—

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।

इत्यनेन लक्षितम् । अत्र यावद्दोषाभावो वक्तुमशक्यः । असंभवात् । यत्किंचिद्दोषाभावे अदोषपदवैयर्थ्यम् । तस्मान्नञोऽल्पत्वमर्थः । अनुदरा कन्येतिवत् । अल्पत्वं च स्फुटप्रतीयमानदोषराहित्यम् ।

इदं काव्यलक्षणं रसगङ्गाधरे दूषितम् । शब्दार्थयोर्व्यासज्यवृत्तिकाव्यत्वे काव्यं श्रुतमर्थो न ज्ञात व्यवहारासंभवात् । तदसमञ्जसम् । पटैकदेशे दग्धेऽपि पटो दग्ध इतिवदेकदेशेऽपि प्रयोगसंभवात् । समुदायवृत्ताः शब्दाः क्वचिदेकदेशेऽपि वर्तन्ते इति भाष्यात् । तल्लक्षणमेव तु न समञ्जसम् । तथाहि। रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दः काव्यम् । रमणीयत्वं च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानविषयत्वमिति तल्लक्षणम् । इदंच तत्त्वमसीत्यादावति-

व्याप्तम्। न चाह्लादे वैजात्यम्। किं ततः । लोकोत्तराह्लादजनकज्ञान-विषयत्वस्योभयत्र तुल्यत्वात्। ब्रह्मण आनन्दत्वेन सर्वैर्वर्णितत्वाच्च।

किंच रमणीयपदस्य रमणीयार्थप्रतिपादकत्वमस्ति न वा। नाद्यः। रमणीयशब्दस्यापि रमणीयार्थप्रतिपादकशब्दत्वेन काव्यत्वापत्तेः। इदं च भाष्ये 'अपशब्दार्थकः शब्दोऽपशब्द इति चेन्न। अपशब्दस्यापि अपशब्दत्वापत्तेः' इत्यनेन ध्वनितम्। नान्त्यः। रमणीयार्थप्रतिपादकत्वाभावे लक्षणत्वानुपपत्तेः। तस्मात्प्रकाशोक्तमेव लक्षणं सम्यक्।

एवं वह्निना सिञ्चतीति वाक्यस्फोट एव। ननु वाक्यार्थबोधेऽयोग्यतानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वं तार्किकादिसिद्धं प्रकृते च वह्निः सेककरणं नेति विषयबाधरूपायोग्यतानिश्चयरूपबाधकसत्त्वाद्विषयाबाधरूपयोग्यताज्ञानासत्त्वात्कथमेतस्य वाक्यस्फोटत्वमिति चेत्सत्यम्। तात्पर्यविषयाबाधो हि योग्यता। तदभावोऽयोग्यता। प्रकृते चात्युष्णजलेन सिञ्चतीति तात्पर्यविषयः। यथा—

अस्य क्षोणिपतेः परार्द्धपरया लक्षीकृता संख्यया
प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणबधिरप्रख्याः किलाकीर्तयः।
गीयन्ते स्वरमष्टमं कलयता जातेन वन्ध्योदरा-
न्मूकानां प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधसि ॥ १ ॥

गगनं गगनाकारं सागराः सागरोपमाः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥ २ ॥

कैलासस्य प्रथमशिखरे वेणुसंमूर्च्छनाभिः
श्रुत्वा कीर्तिं विबुधरमणीगीयमानां यदीयाम्।
स्रस्तापाङ्गाः सरसबिसिनीकाण्डसंजातशङ्का
दिङ्मातङ्गाः श्रवणपुलिने हस्तमावर्तयन्ति ॥ ३ ॥

पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति शिताः शराः।

इत्याद्यालङ्कारिकवाक्येषु, गङ्गायां घोष इत्यादौ तत्त्वमसीत्यादौ च तात्पर्यविषयाबाधो योग्यत्वमिति सर्वसिद्धान्तः। तथात्रापि।

यद्वा शाब्दबोधेऽयोग्यतानिश्चयस्य न प्रतिबन्धकत्वं तत्सत्त्वेऽपि त्वं बृहस्पतिरिति स्तावकवाक्यात्संतोषोपलब्धेः। नाहं रण्डापुत्र इति बाधनिश्चये सत्यपि त्वं रण्डापुत्र इति वाक्यात्क्रोधोपलब्धेश्च। शाब्दबोधाभावे एतदनुपपत्तेः।

किंच पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वादित्यादिसाध्यवसानादिलक्षणास्थले—शरा नीलोत्पलद्वन्द्वापादानकाः नेत्ययोग्यतानिश्चये सति तद्वाक्यश्रवणानन्तरं वाक्यार्थबोधोत्तरमयोग्यतानिश्चयः पूर्वं वा । नाद्यः । बाधनिश्चये सति बोधाभावात् । नान्त्यः । बोधाभावेऽन्वयानुपपत्तेरभावात् । नहि स्वरूपसती अन्वयानुपपत्तिर्लक्षणाबीजम् । किंतु ज्ञाता । न च पूर्वमयोग्यतानिश्चयसत्त्वेन तज्ज्ञानमप्यस्त्येवेति वाच्यम् । वाक्यार्थबोधजन्यान्वयानुपपत्तिज्ञानस्य पूर्वमभावात् । गङ्गा घोषाधिकरणं नेति लौकिकज्ञानसत्त्वे गङ्गायां घोष इति वाक्याद्गङ्गाधिकरणको घोष इति बोधोत्तरमन्वयानुपपत्तिर्हि अनुभवसिद्धा । न च तस्याः पूर्वं ज्ञानं संभवति । न च भ्रमात्मको बोध इति तार्किकोक्तं युक्तिमत् । अयोग्यतानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वं योग्यताज्ञानस्य कारणत्वं प्रकल्पनीयम् । भ्रमात्मको बोधश्च कल्पनीय इति महद्गौरवम् । स्फोटवादिनां त्रितयमपि न कल्प्यमिति लाघवम् । वाक्यार्थबोधजन्यप्रवृत्तावेव तत्स्वीकारात् ।

किंच नाहं परमेश्वर इति बाधनिश्चये सति तत्त्वमसीति वाक्याद्बोधाभावे भ्रमात्मकबोधे वा न प्रमात्मकं ज्ञानं संभवति भ्रमात्मकबोधस्य प्रमात्मकबोधजननायोग्यत्वात् । एवं दशमस्त्वमसीत्यत्रापि ।

ननु अनेकवर्णातिरिक्तोऽनेकध्वनिव्यङ्ग्योऽखण्डवाक्यस्फोटः कः पदार्थ इति चेत्, शृणु । यथा तार्किकैः पूर्वोक्तमद्रीत्या गत्यन्तरसंभवेऽपि चित्ररूपमतिरिक्तं स्वीक्रियते, यथा शाब्दिकै रेफद्वयाज्भागविशिष्ट एको वर्णः ऋति ऋवा ऌति ऌवेत्यत्र वार्तिके स्वीक्रियते, यथा वा सिद्धमेतत् सस्थानत्वादेचोश्चोत्तरभूयस्त्वादिति वार्तिकेऽनेकाचामेकवर्णात्मकत्वमुक्तं तथा मयापि अनेकध्वनिव्यङ्ग्यः वाक्यात्मक एको वर्ण इति स्वीक्रियते । स च शब्दब्रह्मरूपः । तत्र मतत्रयं—

शब्दब्रह्मेति शब्दार्थः शब्दमित्यपरे जगुः ।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे मतिः ॥ इति ।

शब्दब्रह्मेति निर्वचनेनापि तस्य वर्णत्वं सिद्धम् । अनुमानादपि तथाहि । अखण्डवाक्यस्फोटः एकवर्णरूपः श्रावणत्वात्, ध्वनिव्यङ्ग्यत्वाद्वा । यन्नैवं तन्नैवं, यथा पृथिव्यादि । अन्वयदृष्टान्तस्तु मतान्तरसिद्धवर्णादिः ।

वस्तुतस्तु अन्वयव्यतिरेक्यनुमानं व्यर्थम्, उपनीतभानेनैव गतार्थत्वात् । तथाहि । यथा चन्दनखण्डस्य लौकिकप्रत्यक्षं सौरभस्यालौकिकं तथा धूमस्य लौकिकं वह्नेरलौकिकमिति अस्मिन्पक्षे उपनीतभानेनेति विवेकः ।

यद्वा लाघवाद्दोषाभावाद्ध्वनिव्यङ्ग्यस्यान्यस्याभावाच्च वर्णत्वस्वीकारः। न च ध्वनिव्यङ्ग्यत्वस्य गुणीभूतव्यङ्ग्यप्रभेदे काकाक्षिप्तस्यापि अन्यस्य संभव इति वाच्यम्। तस्य ध्वनिविकारकाकुव्यङ्ग्यत्वेऽपि ध्वनिव्यङ्ग्यत्वाभावात्।

किंच 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा भीः ह्रीः इत्येतत्सर्वं मन एव' इति श्रुत्या कामादीनां मनोधर्मत्वे प्रतिपादितेऽपि तार्किकैरात्मधर्मत्वमुक्तं तच्च सर्वैरप्यङ्गीकृतं, तत्तु भ्रमात्मकं तद्वीजं तु यथा जपाकुसुमसंनिधाने स्फटिको लोहित इति ज्ञानम्। प्रकृते तु मनःसांनिध्यमात्मधर्मे बीजं श्रुतिबाधश्च। स्फोटे तु न तथा। तस्मादेकवर्णात्मकोऽखण्डवाक्यस्फोटो वाचक इति सिद्धम्॥

इति श्रीमन्मौनिकुलतिलकायमानगोवर्द्धनभट्टात्मजजानकीजानिरघुनाथभट्टात्मजश्रीकृष्णकृतस्फोटचन्द्रिका संपूर्णा।

प्रातिपदिकसंज्ञावादः ।

श्रीगणेशाय नमः

हेरम्बभानुवाग्देवीफणीन्द्राणामहर्निशम् ।
तथा गुरोः पदाब्जानि प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ १ ॥
विचार्यतेऽर्थवत्सूत्रे किंचिदेव कुतूहलात् ॥

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ।

अभिधेयवचनोऽत्र अर्थशब्द आश्रीयते इति कैयटः । अभिधेयसामान्यवचन एवेति तदर्थः । धातुप्रत्ययपर्युदासवैयर्थ्यापातादभिधेयविशेषवचनस्याग्रहणमिति स्फोटयितुं सामान्येत्युक्तम् । प्रयोजनवदभिधेयवचनग्रहे कूचीमश्र्यादिष्वप्यतिप्रसङ्गः । न चेष्टापत्तिः । साधुत्वेन प्रयोगार्हत्वप्रसङ्गात् । व्याकरणनिष्पन्नत्वस्यैव तत्त्वात् । प्रमात्मकशाब्दबोधजनकत्वस्यापि सत्त्वात् । न च पुण्यजनकतावच्छेदकरूपवत्त्वमेव तत्त्वं, तच्चात्र नास्तीति वाच्यम् । व्याकरणनिष्पाद्यत्वस्यैव तत्सत्तागमकत्वात् । एवं तद्व्यवच्छेदबोधनायैवकारोपादानम् ।

इहार्थवदिति विशिष्टसंज्ञिव्यपदेशार्थं, तत्फलं तु दश दाडिमानि षडपूपा इत्यादेरनर्थक—पदघटित—समुदायस्य तदितरघटकवर्णसमुदायस्य च संज्ञातिप्रसङ्गभङ्ग इति भगवद्भाष्यकारचरणाः ।

समासोभयकृतनियमेनोभयवाक्यकरणादिह न कश्चिद्दोष इति कश्चित् ।

ननु संख्याकर्मादिषु सुपा विधानादर्थवद्भ्य एव स्वाद्युत्पत्तिर्भविष्यति इत्यनर्थकानां प्रातिपदिकत्वेऽपि न कश्चिद्दोष इत्यर्थवद्ग्रहोऽनर्थक एवेति चेन्मैवम् । अविशेषेण स्वाद्युत्पत्तौ तत्तदर्थानां तत्तत्प्रत्ययान्तरसंबन्धव्यवच्छेदफलकस्य तत्तत्प्रत्ययानां, तत्तदर्थान्तरसंबन्धव्यवच्छेदफलकस्य च नियमस्याभ्युपगमात् । अर्थवद्वर्णघटितसमुदायघटकेभ्य एकाज्द्विर्वचनन्यायेन समुदायोत्तरविभक्त्यैव यावदवयवैकत्वबोधनसंभवान्न प्रत्येकं विभक्तिरिति वर्णानामर्थवत्तानिरूपणप्रस्तावे 'संघातस्यैकार्थ्यात्सुबभावो वर्णात्' इति वार्तिकव्याख्यावसरे हयवरट्सूत्रस्थभाष्यकैयटयोः स्फुटतरं द्रष्टव्यम् ।

नन्वनर्थकाना प्रातिपदिकत्वे का क्षतिरितिचेत् वनं धनमित्यादौ जश्त्वादिप्रसङ्ग इत्यवेहि । समुदायस्य पृथक्प्रातिपदिकत्वाद्विभक्तेः श्रवणं न स्यादिति तु विशेषः ।

ननु धातुप्रत्ययपर्युदासादर्थवतो लाभेऽर्थवद्ग्रहणमनर्थकम् । न च प्रसज्यप्रतिषेधः, वाक्यभेदात्समासदोषप्रसङ्गात् । सादृश्यं त्वर्थवत्त्वेनैवेति चेन्मैवं वोचः । पर्युदासाश्रयणे केन रूपेण सादृश्यमित्यप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् । असत्त्ववचनत्वस्यापि सादृश्यप्रयोजकधर्मत्वात्तद्धर्माणां हिरुगादीनामेव संज्ञाप्रसङ्गात् । न च कारकान्वयितावच्छेदकरूपवत्त्वरूपासत्त्वभूतत्ववदबोधकत्वान्न तद्धर्मेण सादृश्यमिति वाच्यम् । लिङ्गसंख्याद्यन्यतरानन्वयित्वरूपस्य तस्य भर्तृहर्यादिसिद्धान्तव्यवस्थापकैर्बुधैः सिद्धान्तितत्वादत्र च सत्त्वात् । अर्थवत्त्वेनैव सादृश्यमिति वदतां तु धातुप्रत्ययपर्युदासाश्रयणादर्थवत एव संज्ञा भविष्यति नार्थोऽर्थवद्ग्रहणेनेत्याशङ्क्याह इत्यर्थवदिति ग्रन्थावतारणं कैयटोक्तमलग्नकं स्यात् । एतेन नञिवयुक्तन्यायानित्यत्वज्ञापकमर्थवद्ग्रहणमित्थं चोषधेश्चेत्यादौ विभक्तिकारकग्रहणयोरेव प्रत्याख्यानसंभव इति परास्तम् ।

यदपि पर्युदासेनार्थवत्त्वं यद्यपि लभ्यते तथाप्युत्तरार्थं तदित्युक्तं तदप्येतेन प्रत्युक्तम् । पर्युदासादर्थवत्त्वे लब्धेऽर्थवद्ग्रहणमुत्तरार्थमिह तु स्पष्टार्थमिति कौस्तुभस्तु चिन्त्य एव ।

न च पूर्वसूत्रस्थार्थवद्ग्रहणस्य सार्थक्यापत्त्या कृत्तद्धितसूत्रे तदन्तविधिज्ञापकता न स्यात् । तदन्तविध्यभावस्तु संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्नास्तीति वचनादिति वाच्यम् । तस्य सार्थक्येऽपि तदंशे स्वरितत्वप्रतिज्ञासामर्थ्यात्तदन्तविधिज्ञापकतासंभवात् ।

न च सुप्तिङ्सूत्रस्थभाष्यविरोधः 'अर्थवदिति वर्तते कृत्तद्धितान्तं चैवार्थवत् । न केवलाः कृतस्तद्धिता वा' इति हि तत्र भाष्यम् । तस्य च कृत्तद्धितानामर्थवत्त्वाव्यभिचारादनुवृत्तस्यार्थवत्पदस्याव्यावर्तकतायामपि स्वरितत्वप्रतिज्ञासामर्थ्याद्विशिष्टार्थवत्युपसंहारवदित्याशयात् । एतेन उत्तरार्थमेवेति सुप्तिङन्तमिति सूत्रे भाष्ये ध्वनितमित्यपास्तम् । स्वरितत्वप्रतिज्ञायां त्वर्थवदिति वर्तत इति भाष्यमेव मानम् ।

यत्तु न च पूर्वसूत्रे चरितार्थता धातुप्रत्ययपर्युदासेनैव तल्लाभादित्युक्तं तच्चिन्त्यम् । उक्तभाष्यविरोधादिति ध्येयम् ।

धातुपर्युदासोऽहन्नित्यादौ नलोपवारणार्थः । यथोद्देशपक्षे विशेषविहितैस्तिबादिभिर्बाधान्न सत्यपि प्रातिपदिकत्वे सुबाद्युत्पत्तिर्न वा नलोप इति धातुपर्युदासस्याप्रयोजकत्वेऽपि कार्यकालपक्षे विशेषविहितानां लोपेन लोपविध्येकवाक्यतापन्नप्रातिपदिकत्वेन नलोपो दुर्वार इति तद्वारणाय धातुपर्युदास आवश्यक एव । न च प्रत्ययलक्षणेन प्रत्ययान्तप्रतिषेधेनैव निर्वाहे मास्तु धातुपर्युदास इति वाच्यम् । न ङिसंबुद्ध्योरितिज्ञापकात् नलोपे विधीयमाने प्रत्ययलक्षणेनाऽप्रत्यय इति निषेधाभावात् ।

यत्तु प्रत्ययलक्षणेन प्रत्ययान्तपर्युदास इत्युक्तं तच्चिन्त्यं, प्रत्ययान्तभिन्नकार्यत्वेन प्रत्ययलक्षणाभावात् । अत एव सूत्रशेषभाष्ये राजा तक्षा प्रत्ययलक्षणेन प्रत्ययो नेति प्रतिषेधः प्राप्नोतीत्युक्त्वा तदापि दूषणखण्डनाय ' अथवा पुनरस्तु पर्युदासः ' इत्युक्तम् ।

पर्युदासेऽपि प्रत्ययलक्षणे तूक्तदूषणतादवस्थ्यादथवेतिग्रन्थोऽसंगत एव स्यात् । इह 'अधातुरिति शक्यमवक्तुम् । कस्मान्न भवति अहन्वृत्रहन्निति । आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति न धातोः प्रातिपदिकसंज्ञा भवतीति । यदयं सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति धातुग्रहणं करोति । नैतदस्ति ज्ञापकं प्रतिषिद्धार्थमेतत्स्यात् ' इति भाष्यं प्रत्ययान्तखण्डनपरं न धातुपर्युदासखण्डनपरमिति कृत्तद्धितान्तस्यैवेति नियमो भविष्यति इत्यादिभाष्यानुवादेन स्फुटीकरिष्यामः ।

अत्र भाष्ये प्रतिषिद्धार्थमेतत्स्यादित्यस्योदाहरणं श्येनायत इति । अत्राप्रत्यय इति प्रातिपदिकसंज्ञाया निषिद्धत्वादन्तर्वर्तिसुब्लोपार्थं धातुग्रहणस्यावश्यकतैवेति भावः ।

यद्यपि शक्यमवक्तुमिति ग्रन्थात्कुशकाशावलम्बेनेहैव धातुपर्युदासखण्डनपरमिदमिति प्रतीयते । तथा हि प्रत्ययान्तस्य प्रातिपदिकत्वे न किंचिदनिष्टम् । न च काण्डे कुड्य इत्यादौ ह्रस्वो नपुंसक इति ह्रस्वप्रसङ्गः, नपुंसकवृत्तित्वस्य प्रातिपदिकधर्मत्वेन नपुंसके च वर्तमानस्येत्यर्थेनैव सिद्धे प्रातिपदिकग्रहणस्य सत्वप्रधानप्रातिपदिकग्रहणार्थत्वज्ञापनात् । न च सुबुत्पत्तिः, संख्याकर्मादेरभावात् । नाऽपि हुंफडादिवत्प्रातिपदिकत्वसामर्थ्यादौत्सर्गिकैकवचनापत्तिः, सुप्तिङन्तसूत्रस्थ तिङ्ग्रहणेन तदनुत्पत्तिबोधनात् । न च सुपो धात्विति लुगापत्तिः, धातुसाहचर्येण विभक्तीतरसमभिव्याहृतस्यैव तेन लुग्विधानात् । पचेरन्सर्वस्मिन्नित्यादौ तूच्चारणसामर्थ्यान्न लोपः ।

एवं स्थिते श्येनायत इत्यादेः प्रातिपदिकत्वेनैव सुब्लुकि सिद्धे सुपो-धात्वित्यत्र क्रियमाणं धातुग्रहणमेव ज्ञापयति न धातोः प्रातिपदिकत्वं भवतीति धातुपर्युदासो मास्त्विति । तथाप्युत्तरग्रन्थविरोधान्न स्थिरमेतत् ।

यत्तु उक्तरीत्या प्रत्ययान्तपर्युदासो न कार्य इति सूत्रशेषे भाष्ये ध्वनितमित्युक्तं तच्चिन्त्यम् । अप्रत्यय इति पर्युदासप्रसज्यप्रतिषेधपक्षयोरुभयोरपि पूर्वान्तवत्त्वेन प्रातिपदिकत्वेन ह्रस्वत्वे प्रसक्ते विभक्त्येकदेशस्य पूर्वान्तवत्त्वाभावे ह्रस्वसूत्रगतप्रातिपदिकग्रहणस्य ज्ञापकत्वेनोदाहरणात् । अन्यथा ज्ञापकत्वे प्रत्युक्ते पूर्वभाष्यग्रन्थस्यालग्नकतापत्तेः ।

पूर्वभाष्यदूषणतात्पर्यककैयटग्रन्थस्तु प्रामादिक एवेत्यनुपदं वक्ष्यते इति सहृदयैर्विवेचनीयम् ।

'प्रत्यय इति किं काण्डे कुड्येऽप्रत्यय इति शक्यमवक्तुम् । कस्मान्न भवति काण्डे कुड्ये इति । कृत्तद्धितग्रहणं नियमार्थं भविष्यति कृत्तद्धितान्तस्यैव प्रत्ययान्तस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति नान्यस्य' इति भाष्यम् ।

इदं च प्रत्ययान्तपर्युदासखण्डनपरम् । तथा हि अप्रत्यय इत्यत्र प्रत्ययपदं प्रत्ययान्तपरं पर्युदासपक्षे संज्ञाविधौ तदन्तविध्यभावेऽपि विभक्तीतरानपेक्षयार्थबोधकत्वरूपार्थवत्त्वग्रहात्प्रत्ययपर्युदासवैयर्थ्यात्तात्पर्यानुपपत्त्या प्रत्ययान्ते लक्षणासत्त्वात् । स च प्रत्ययान्तपर्युदासो न कार्यः । प्रत्ययान्तस्य चेत्कृत्तद्धितान्तस्यैवेति नियमाश्रयणात् । इह कृद्ग्रहणनियामकत्वकथनेन धातुपर्युदासखण्डनमप्यभिप्रेतम् । तद्धीति(?)धातोः प्रातिपदिकत्वे न कापि क्षतिः ।

यथोद्देशेऽहन्नित्यादौ धातोः प्रातिपदिकत्वेन सुबापादनं दुर्वचम् । येन नाप्राप्तिन्यायेन तिबादीनामपवादकत्वात् । तल्लोपाव्यवहितोत्तरक्षणेऽपि न तत्प्राप्तिः अपवादविषयपरिहारेणोत्सर्गस्य प्रवृत्तेः । परिहृत्यापवादविषयमुत्सर्गोऽभिनिविशत इति स्मरणाच्च । न च यत्रापवादश्रुतिस्तत्र नोत्सर्गोऽत्र तु नापवादश्रुतिः । देवदत्तहन्तृन्यायेन सुपउन्मज्जनात् । न च 'तौ सत्' इत्यादिनिर्देशैस्तन्न्यायस्यानित्यत्वम् । हते देवदत्ते तद्धन्तरि हतेऽपि नोन्मज्जनम् । देवदत्तस्य हतत्वारोपे तु सुतरां हन्तुमुद्यतस्य हनने तूज्जीवनं भवत्येवेति न्यायशरीरम् । तावित्यादौ वृद्धिहन्तुः पूर्वसवर्णस्य हननोद्यमसजातीयप्रसङ्गमात्रं न तु हननस्थानीया लक्ष्ये प्रवृत्तिरिति न तत्रैतन्न्यायविषय इति (न) तेनास्यानित्यत्वबोधनमित्यभिधानात् ।

अन्यथा जश्त्वशास्त्रप्रवृत्त्युत्तरकाले चर्त्वशास्त्रस्य चारितार्थ्यान्नापवादकत्वं स्यात् । तत्र हि जश्त्वशास्त्रप्रवृत्तिकाले नियतप्राप्तत्वेन तत्प्राप्तिविषये चारितार्थ्याभावमात्रेण येननाप्राप्तिन्यायेन तदपवादकत्वम् । अन्यथा ब्राह्मणत्वावच्छेदेन विहितदधिदानस्य कौण्डिन्योद्देश्यकतक्रदानेन बाधो न स्यात् । तद्दानात्पूर्वं तदुत्तरं वा चारितार्थ्यात् ।

कौण्डिन्यस्य दधिदानप्राप्तिस्तु न, ब्राह्मणेभ्यो दधि देयं न कौण्डिन्याय देयमित्यत्र न देयमिति विशेषनिषेधश्रुत्या ब्राह्मणेभ्यो दधीत्यादौ ब्राह्मणपदस्य कौण्डिन्यातिरिक्तब्राह्मणपरत्वेन तद्वाक्यस्य कौण्डिन्यातिरिक्तब्राह्मणसंप्रदानकदधिदानबोधकत्वादिति दीधितिकारादयः ।

किंच पादोन्यतरस्यामित्यस्य टाबृचीत्यपवादो न स्यात् । तदभावपक्षेऽस्य चारितार्थ्यात् । तस्मादुक्तमेव रमणीयम् । सत्यपि संभवे बाधनं भवतीति मिदचोन्त्यादिसूत्रस्थं भाष्यमप्यत एव संगच्छते ।

लविधौ तिबादिविधौ च भूवादय इत्यस्योपस्थितेर्निरवकाशतया न सुबुत्पत्तिरित्यपि केचित् । न चैवमपि नलोपो दुर्वारः, नलोपसूत्रे प्रातिपदिकग्रहणस्य सत्वप्रधानप्रातिपदिकग्रहार्थत्वात् । रामानित्यादौ तु विधानसामर्थ्यान्न लोप इति ।

एवं स्थिते कृद्ग्रहणस्य नियामकत्वमपि संगतम् ।

कैयटस्तु कृत्तद्धितग्रहणमिति प्रतीकमुपादाय तद्धितग्रहणमत्र नियमार्थं कृद्ग्रहणं प्रतिषेधार्थं भिद्छिद् इति । अत्र त्वधातुरिति प्रतिषेधप्रसङ्ग इत्याह ।

यत्तु प्रत्ययपर्युदासे सात्पदाद्योरिति सूत्रे सातिग्रहणं व्यर्थं स्यादिति मनोरमायामुक्तं तच्चिन्त्यम् । सोढदूसमरीसजर्थत्वात् । आचक्षाणणिजन्तात् क्विप्यनिष्टरूपप्रसङ्गात् । सोढे दोषस्य दुरुद्धरत्वात् । आदेशप्रत्यययोरित्यत्र साद्ग्रहणाद्वसिग्रहणाच्च नोभयत्र सामानाधिकरण्यं वैयधिकरण्यं च, तत्र प्रत्ययावयववृत्तित्वात्प्रत्ययशब्दस्य सामानाधिकरण्येऽपि वैयधिकरण्यफललाभ इति कैयटेनार्थवत्ताध्वननाच्च ।

गुरुचरणास्तु प्रत्ययान्तं चेति प्रतीकमुपादाय, ननु प्रत्ययान्तपर्युदासो व्यर्थः कृत्तद्धितेतिसूत्रे लिङ्धुगित्यादावधातुपर्युदासबाधाय कृद्ग्रहणस्य विधायकत्वेऽपि तद्धितग्रहणस्य प्रत्ययान्तस्य चेत्प्रातिपदिकत्वं तर्हि तद्धितान्तस्यैवेति नियमार्थतया तद्धितेतरप्रत्ययान्तस्य प्रातिपदिकसंज्ञाव्यावृत्तिसिद्धेरिति चेदित्याशङ्क्य कर्ता कारक इत्यादावपि संज्ञानिवृत्तिप्रसङ्गः स्यात् ।

कृद्ग्रहणस्य तद्धितनियमेन परेण बाधात् । न च बाध्यसामान्यचिन्तायां परस्यापि तद्धितनियमस्य कृद्ग्रहणेनैव बाधः सुवचः, समासनियमस्यापि बाधापत्तौ मूलकेनोपदंशमिति वाक्यस्य निवृत्तिप्रसङ्ग इति दीक्षितानामाशय इत्युत्तरयांचक्रुः ।

अत्र नामग्रहणादरुचिर्ध्वन्यते कृद्ग्रहणस्य नियामकत्वादयं दोषो दुर्वचः । तद्धितग्रहणस्यैव नियामकत्वे ह्ययं दोषः ।

अस्तु वा कैयटानुसारात्कृद्ग्रहणस्य विध्यर्थत्वं तथापि न दोषः । बाध्यसामान्यचिन्तायां परस्यापि तद्धितनियमस्य बाधात् । मूलकेनोपदंशमित्यादौ तु शब्दाधिकारमाश्रित्यार्थवद्ग्रहणानुवृत्तावेकार्थीभावविवक्षणान्न दोषः । स्वीकृतं चैवमेव कौस्तुभ इति ।

यत्तु सात्पदाद्योरिति सातिग्रहणात्प्रत्ययो न प्रातिपदिकमिति सिद्धे पूर्वसूत्रस्थप्रत्ययग्रहणं सामर्थ्यात्तदन्तपरमित्युक्तम् । तच्चिन्त्यम् । प्रत्ययप्रातिपदिकत्वाभावज्ञापकताया दूषितत्वात् । न च ङ्याब्ग्रहणमेव प्रत्ययप्रातिपदिकत्वाभावज्ञापकमस्तु, अस्तु कृत्तद्धितग्रहणं विध्यर्थमिति शङ्कनीयम् । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया सिद्धेरज्ञापकत्वात् । न चाप्रत्यय इति बहुव्रीहिरेवास्त्विति चेन्मैवं, तथा सति बहुपटु इत्यस्य संज्ञाभावप्रसङ्गात् । एवं स्थिते प्रत्ययान्तपर्युदासो मास्त्विति सिद्धम् ।

इहार्थवत्यनेकपदप्रसङ्ग इति वार्तिकम् । तत्रानेकं च तत्पदं चेति विग्रहः । अनेकस्यापि पदस्येति व्याख्यानुरोधात् । अत्र च समुदितस्येति बोध्यम् । अप्रत्यय इत्युक्ते प्रतिपदप्रसङ्गात् ।

कैयटस्त्वनेकं पदमस्मिन्नित्यनेकपदं समुदाय इति व्याख्यत् । न च समुदायस्याप्रसङ्गः । प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहित इति वचनात्समुदायस्याप्रत्ययान्तत्वात् । गवानदित्यादेराचक्षाणणिच्प्रकृतिकक्विबन्तसमुदायस्य प्रत्ययान्तत्वेऽप्यवाक्यत्वान्न दोषः । न च स्वस्वार्थप्रातिपदिकपदानामाकाङ्क्षासन्निधियोग्यता च संसृष्टतदर्थानां च वाक्यवाक्यार्थत्वे वाक्यस्य नित्यध्वनिव्यङ्ग्यत्वात्, पदार्थसंसर्गरूपविशिष्टार्थस्य च तद्वाच्यत्वात् । अन्यथा शब्दजन्यप्रतीतिविषयताशालित्वानापत्तेः ।

न चाशक्योऽपि संसर्गो वाक्यसामर्थ्याद्भासते अननुगमात् । परेषां तु वाक्यस्याशक्यत्वात्समासग्रहो व्यर्थ एव स्यात् । न चेष्टापत्तिः अर्थवत्समुदायानां समासग्रहणं नियमार्थमिति ग्रन्थानवतारप्रसङ्गात् । अर्थव-

त्यनेकपदप्रसङ्ग इति पूर्वपक्षवार्तिकोदाहरणत्वेनोपन्यस्तं दशदाडिमादि परिहृत्यैवमपि वाक्यप्रतिषेधोऽर्थवत्त्वादित्युत्तरवार्तिकव्याख्यावसरे देवदत्त गामभ्याज शुक्लां देवदत्त गामभ्याज कृष्णामित्युदाहृत्यार्थवद्धयेतद्वाक्यमित्युक्तेः । तुल्यन्यायेन कृत्तद्धितान्तयोरप्येकार्थीभावाभावप्रयुक्तानर्थक्ययोः प्रातिपदिकत्वाप्राप्तेः प्रत्ययान्तपर्युदासखण्डनपरकृत्तद्धितनियमप्रातिपदिकभाष्यग्रन्थासंगत्यापत्तेश्च । अतिङ् प्रातिपदिकामिति न्यासेन समासग्रहणस्य नियमार्थत्वं तु तन्न्याय(स?)स्य प्रतिवर्णं प्रसक्तत्वादकिंचित्करम् । इत्थं चान्यथानुपपन्नप्रातिपदिकत्वमेव समासादावर्थवत्त्वानुमापकमित्यर्थवदित्यादिन्यास एव समञ्जसः ।

न च स्वघटकपदवृत्त्यार्थबोधकत्वमेवार्थवत्त्वं, न तु वृत्त्यार्थबोधकत्वम् । अनर्थकदशदाडिमादिसमुदायेऽतिप्रसङ्गात् । न चेष्टापत्तिः । अनर्थकत्वेन वारणस्याकराभिहितस्यासंगतिप्रसङ्गात् । समासादावनेकार्थीभावे हि तन्निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतापर्याप्त्यधिकरणत्वमूलक—'पदार्थः पदार्थेनान्वेति नतु पदार्थैकदेशेन' इति व्युत्पत्तेः प्राप्तोदकादौ भग्नतया राजपुरुषादौ राज्ञि सुन्दरत्वादिविशेषणापत्तिप्रसङ्गः । तद्वारणार्थं च वृत्तस्य विशेषणयोगो नेति वचनारम्भे गौरवम् । राजपुरुषोऽश्वश्चेत्यादिवारणाय वृत्तौ सजातीयविशेष्यान्तरयोगो नेत्यपि वचनं कार्यं स्यात् । साजात्यं चेहैकपदबोध्यत्वेन । तेन राजगोपुरुषावित्यादौ विशेष्यान्तराव्यवच्छेदः ।

एवं राजपुरुषो भार्यायाश्चेत्येतद्वारणाय सजातीयविशेषणान्तरयोगो नेत्यपि वचनं कार्यं स्यात् । राजदेवदत्तपुरुष इत्यादेरत्राव्यवच्छेदः । द्वन्द्वे चशब्दप्रयोगवारणायापि वचनमारभ्यं स्यात् । एवं निष्कौशाम्ब्यादौ क्रान्तादिप्रयोगवारणायापि महाविभाषाधिकारश्चारम्भणीयः स्यात् ।

न चैकार्थीभाववादिमते निषादस्थपत्यधिकरणविरोधः । पूर्वपक्षाभावेन सिद्धान्तस्य निर्दलत्वात् । न च शक्तितज्ज्ञानहेतुतयोरिव लक्षणातज्ज्ञानहेतुतयोरपि क्लृप्तत्वात् षष्ठीसमास एव युक्तः । तथा सति निषादानां स्थपतेर्लब्धविद्यस्य त्रैवर्णिकस्य याजनसंभवान्नापूर्वविद्याप्रयुक्तिकल्पनं न वा स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति निषेधसंकोच इति वाच्यम् । एवमपि सिद्धान्तभङ्गापत्तेरिति वाच्यम् । वेदे कर्मधारयसंभवे नान्यसमास इति नियमाङ्गीकारात् । न चातिरेकः तुल्यत्वात् । न च क्लृप्तत्वान्नातिरिच्यतेऽस्मत्कृतनियमः । वचनान्तरातिरेकवदशेषत्वात् , सिद्धान्ते तु समानाधिकरणप्राति-

पदिकार्थयोरभेदान्वय इत्यादीनां व्युत्पत्तिकदम्बाना भिन्नोपस्थिति-विषयत्वात् । एकार्थीभावस्य च प्रक्रियादशायां पृथगर्थत्वेन प्रथमगृहीतानां पदानां विशिष्टैकार्थोपस्थितिजनकत्वरूपत्वादशेषः । विवेचितं चैतद्विस्तरेण ग्रन्थान्तरेषु ।

व्यपेक्षावादिमते हि 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' इति सूत्रगतभाष्य-मसंगतं स्यात् । तत्र हि समासग्रहात्पूर्वसूत्रे व्यपेक्षालक्षणे सामर्थ्ये गृहीते वाक्ये एव षत्वविकल्पो न समासे नित्यग्रहात्तु न विकल्पानुवृत्तिः । व्युत्पत्तिपक्षे च इदम् ।

अव्युत्पत्तिपक्षे त्विदुदुपधस्येति नित्ये सिद्धेऽनुत्तरपदस्थस्येति षत्वप्रति-षेधमात्रार्थम् ।

वस्तुतो व्युत्पत्तिपक्ष एव ससंश (?) आदरणाय सर्पिषा यजुषेत्यादिसि-द्धय इति तत्रोक्तम् । व्यपेक्षापक्षे त्वाश्रीयमाणे 'इसुसोः सामर्थ्ये' इत्यनेन विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थमिदमित्यर्थः स्यात् । तच्च भाष्यकृतामनभिप्रेतमेव ।

किं च परमसर्पिः कुण्डिकेत्यादौ विकल्पप्रसङ्गः स्यात् । तथा चानुत्तर-पदस्येति किं परमसर्पिःकुण्डिकेत्युदाहृत्येदानीमनेन मुक्ते पूर्वेण षत्वं वि-भाषा कस्मान्न भवति इसुसोः सामर्थ्ये इतीत्याशङ्क्य—

नानापदार्थयोर्वर्तमानयोः ख्यायते यदा योगः ।
तस्मिन् षत्वं कार्यं तद्युक्तं तच्चमेते ह(?) ॥

इतिवार्तिकव्याख्यायां व्यपेक्षासामर्थ्ये पूर्वयोगः न चात्र व्यपेक्षासाम-र्थ्यमिति समाधाय किं पुनः कारणं पूर्वस्मिन् योगे व्यपेक्षासामर्थ्यमाश्री-यते न पुनरेकार्थीभावो यथान्यत्रेति पुनराशङ्क्यैकार्थे सति वाक्ये षत्वं न स्यात् सर्पिष्करोति सर्पिःकरोतीत्युक्तं तदसंगतं स्यात् । अपि चानेन ग्रन्थेन कण्ठरवेणैव भाष्यकृद्भिरुक्तम् 'समासे व्यपेक्षा नास्तीति' तत्कथं महर्षिवचनमनादृत्य समासे व्यपेक्षामङ्गीकुर्वते तार्किका इति सहृदयैराक-लनीयम् ।

नन्वस्तु समासादावेकार्थीभावः, तथापि वाक्यस्य प्रातिपदिकत्वं कुतो नेति चेत् । अर्थवत्समुदायानां समासग्रहणं नियमार्थमिति भाष्यात् । अ-र्थवतां सुबन्तानां समुदायोऽत्र विवक्षितः । तुल्यजातीयस्य नियमः कश्चित्तु-ल्यजातीयः यथाजातीयकानां समासः कथं जातीयकानां समासः सुब-न्तानामित्यग्रिमभाष्यस्वरसात् । अन्यथा बहुरवा(?)दावतिप्रसङ्गात् । समासस्य सुबन्तकृदन्तघटितत्वेऽपि प्राचुर्यादेवमुक्तम् ।

भेदसंसर्गद्वारकार्थवत्त्वयुक्तसुबन्तासुबन्तानामश्वक्रीतीत्यादौ गतिकारकेत्यादिवचनात्समासदर्शनात्सुबन्तानामित्युपलक्षणमिति कैयटः। सजातीयत्वाभावेऽप्यर्थवत्समुदायानां समासेत्यत्रार्थवत्पदस्य स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हार्थवदित्यर्थः । गावित्ययमित्यादावनुकरणस्यानितिपरस्यापि प्रयोगसत्त्वेन तत्त्वमस्त्येव। प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्य तु न व्यावृत्तिः। प्रत्ययस्य स्वातन्त्र्येण प्रयोगार्हार्थवत्त्वाभावात् ।

सरूपसूत्रे भाष्ये सुबन्तानामित्यनेनेदमेवोपलक्ष्यत इति बोध्यमित्यपि केचित्। न चैवं सुप्तिङ्समुदायस्य प्रसङ्गः । जहि कर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये इत्यनेन नियमात् । न चैवमपि तिङ्समुदायस्य प्रसङ्गः, आख्यातमाख्यातेनेति नियमेन निर्वाहात् ।

यत्तु यत्र संघाते पूर्वोभागः पदमुत्तरस्तु प्रत्ययो नेत्याद्याकारको नियमः, जन्मवानित्यादिवारणायोत्तरेति, राज इयानित्यादौ तु पूर्वभागप्रकृतिकप्रत्ययाभावविवक्षणाददोष इत्याहुः । तच्चिन्त्यम् । गावित्ययमाहेत्यादौ दोषस्य स्फुटतरत्वात् । वृषण्वसुरित्यादिसमासे पूर्वभागस्य भत्वेन तत्साजात्याभावेन पूर्वो भागः पदमित्यर्थलाभासंभवात् ।

यदपि प्रकृतिप्रत्ययभावानापन्नसंघातविषयको नियम इत्युक्तं, तदपि चिन्त्यम्। एकैकस्मै देहीत्यादौ द्विरुक्तैकशब्दस्यैकं बहुव्रीहिवदिति बहुव्रीहिवद्भावेऽपि प्रातिपदिकसंज्ञानिवृत्तिप्रसङ्गात् । अतिदेशस्य स्वाश्रयाविरुद्धकार्यप्रतिपादकत्वमिति क्षियोदीर्घादिति सूत्रे भाष्येऽभिधानात् ।

न च बहुव्रीहौ दृष्टस्य प्रातिपदिकत्वस्यानेनैव विधिः। एवमपि नियमवारणात् । न चासावर्थवत्सूत्रस्यैव नियमः । जन्मवानित्यादौ तद्धितान्तत्वप्रयुक्तप्रातिपदिकत्वानिवृत्तये यत्र संघातेत्यादिनियमशरीरेऽधिकप्रक्षेपस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । नाप्यतिदेशसामर्थ्यम् । स्वरपुंव(द)तिदेशेन सार्थक्यात् । न चापि पक्षान्तरे प्रातिपदिकत्वं सुतरां नियमप्रसङ्गात् । तस्मान्नायं नियमो युक्तः ।

किंचास्मिन्सति समुदायप्रातिपदिकत्वाभावात्सुबनापत्तिः । स्थानेद्विर्वचनपक्षेऽप्याश्रीयमाणे स्थानिवत्त्वेन प्रातिपदिकत्वं दुर्वचम् । स्थानिनः सुबन्तत्वेन समुदायस्यापि सुबन्तत्वात् ।

किंचैवं प्रातिपदिकात्तद्धिता इति पक्षे पौनःपुनिक इत्यादि(?)सिद्धिप्रसङ्गः । श्रूयमाणप्रत्ययान्तस्यैव प्रातिपदिकत्वनिषेधेऽपि प्रकृतनियमेन तद्वारणात् । अपि चैवम्(?)। वस्तुतस्तु द्विःप्रयोगपक्षो दुर्बलः। पौनःपुन्यं,

पौनःपुनिकः, इति समुदायात् ष्यङ्ठ्योरनुपपत्तिप्रसङ्गात् । तत्र हि अन्तरङ्गत्वात्सुब्लुकि द्वित्वं ततश्च समुदायस्य सुबन्तत्वाभावात्प्रातिपदिकत्वाभावाच्च तदुत्पत्तिः । प्रातिपदिकत्वं तु समासकृतनियमान्नेति द्विरुक्तप्रक्रियास्थग्रन्थासंगतिप्रसङ्गः । स्थाने द्विर्वचनपक्षेऽपि दोषात् ।

न च समुदायादेकविभक्तौ परत इति पक्षस्योक्तिसंभवायायं नियमः सुबन्तानामित्यादिनियमेनाऽपि निर्वाहादित्यलमाकरोक्तनियमविरुद्धनियमवचनचातुरीचणत्वेनेत्युपरम्यते ।

यत्तु समासस्य लुप्तविभक्त्यन्तत्वात्कृदादिसूत्रे समासग्रहणे तत्सूत्रस्यार्थवदादिप्रपञ्चत्वं मिश्राद्युक्तं विरुध्येतेत्याशङ्क्य तत्र प्रत्यासत्त्या प्रत्ययपदस्य कृत्तद्धितान्तसमासेतरप्रत्ययान्तभिन्नपरत्वमित्युक्तं तच्चिन्त्यम् । समासस्याप्रत्ययान्ततया विध्यर्थत्वायोगात् ।

यदपि कृत्तद्धितेति व्यर्थम् । ते देवानित्यादिप्रकृतिप्रत्ययसमुदायवारणार्थवदादिसूत्रेऽप्रत्ययपदस्य प्रत्ययतदन्तान्यपरत्वेऽपि विभक्तिविभक्त्यन्तोभयभिन्नपरत्वाङ्गीकारात् । समासस्य तु स्वघटकपदवृत्त्यार्थबोधकत्वरूपार्थवत्त्वादेव निर्वाह इति तदपि व्यर्थमित्यूचुः । तदपि चिन्त्यम् । प्राग्दिशीयाधिकारपठितविभक्तिसंज्ञकप्रत्ययान्तकानां संज्ञानापत्तेः । तेषु च त्यदाद्यत्वाद्यनापत्तेश्च समासग्रहणस्य नियमार्थत्वान्न वैयर्थ्यमिति न किंचिदेतत् ।

खपुष्पशशशृङ्गादेरपि बुद्धिपरिकल्पितसंबन्ध आरोपितखादिसंबन्धवत्पुष्पादौ च शक्तिरस्त्येवेति न तदर्थं समासग्रहः । न च बाधबुद्धेः प्रतिबन्धकत्वान्न शाब्दबुद्धेरुदयः ।

यस्य क्षोणिपतेः परार्धपरया लक्षीकृताः संख्यया
प्रज्ञाचक्षुरवेक्ष्यमाणतिमिरप्रख्याः किलाकीर्तयः ।
गीयन्ते स्वरमष्टमं कलयता जातेन वन्ध्योदरात्
मूकानां प्रकरेण कूर्मरमणीदुग्धोदधे रोधसि ॥

इत्यादेस्तदुदयेन तस्याप्रतिबन्धकत्वात् । उक्तं च खण्डनकारैः—

" अत्यन्तासत्यपि ह्यर्थे ज्ञानं शब्दः करोति हि " इति ।

नन्वेवमप्यसमर्थसमासार्थं तत्स्यादिति चेत्, धर्मिग्राहकमानादेव तत्सिद्धिरित्यवेहि । न च त्वन्मते वाक्यस्य शक्तत्वेन घटमानयेत्यादौ नीलादिविशेषणयोग इति भ्रमितव्यम् । विशेषणविशेष्यभावांशे तच्छक्तावपि तद्घटकपदानां स्वस्वार्थशक्तिक्षत्यभावात् । समासस्य त्वनेवंविधत्वान्न तदर्थैकदेशे

विशेषणादियोगः । वाक्यस्य स्फोटरूपतया नीलघटमानय, घटमानयेत्यादेर्भेदएव वेत्यदोषः । न चैवं बहुगोमत्केत्यादौ विभक्तेः पुरस्तात्समास इति पक्षे विशिष्टस्य सुबन्तत्वाभावेन सुबन्तात्तद्धित इति सिद्धान्तविरोधः। तेषामतिरिक्तार्थाभावेन परिपूर्णं पदमिति न्यायाविषयतया तत्सिद्धान्तस्य समासान्तेऽभावादित्याहुः ।

वस्तुतः समासार्थककल्प्यमानालौकिकप्रक्रियावाक्यस्य प्रातिपदिकत्वादेव तद्धितः सुलभः । प्रशंसायां रूपवितिसूत्रस्थभाष्यप्रामाण्यादयमपि पक्षः संमत इति ग्रन्थान्तरे प्रतिपादितत्वात् । यदि विशिष्टस्य प्रातिपदिकत्वात्सुपि सुबन्ता इति तद्धितः संभवतीत्युच्यते तर्ह्यस्तु सोऽपि, न किंचिदनुपपन्नम् ।

अनर्थकस्य प्रातिपदिकत्वं त्वधिपरी अनर्थकाविति ज्ञापकादिति भाष्यकृतः । कृत्तद्धितसमासाश्चेत्यनुक्तसमुच्चयार्थेन चेन संग्राह्यमित्यपि कश्चित् । तत्संज्ञाफलं स्वर इति सर्वं शिवम् ।

आकरोक्तां दिशं गत्वा मया कनकमीप्सता ।
अलम्भि हीरमुक्ताली वाग्देवी वदनाम्बुजात् ॥ १ ॥
मणिग्रन्थनचातुर्यं पन्नगेन्द्रात्प्रभोर्मया ।
कालेन भूयसा लब्धमर्थवत्सूत्रमेव तु ॥ २ ॥

इति श्रीगोडबोलोपाख्यनारायणकृतः प्रातिपदिकसंज्ञावादः समाप्तिमगमत् ।

वाक्यवादः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ किमिदं वाक्यं नाम । 'एकतिङ् वाक्यम्' इति भाष्यात् 'एकतिङन्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधजनकपदसमूहो वाक्यम्' इति वैयाकरणाः । तेन पचति भवतीत्यादौ पश्य मृगो धावतीत्यादौ च क्रियापदस्यानेकत्वेऽपि न एकवाक्यताव्याघातः ।

'नहि क्रियाविनिर्मुक्तं वाक्यमस्ति' इति भाष्यात् 'अस्तिर्भवन्तिपरः प्रथमपुरुषः' इत्यादिकात्यायनस्मरणाच्च सर्वत्र समुचितः क्रियापदाध्याहारः । न चास्तु क्रियापदाध्याहारस्तथाऽपि बोधविशेष्यकत्वं प्रथमान्तार्थस्यैवेति वाच्यम् । पश्य मृगो धावतीत्यादावगतेः प्रथमान्तार्थयोर्विशेष्यत्वे वाक्यभेदप्रसङ्गात् । मृगस्य दर्शनक्रियायां कर्मतयान्वये मृगपदोत्तरं द्वितीयापत्तेः । द्वितीयायां च सत्यां "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इत्यनुशासनाल्लटः शत्रादेशे धावन्तं मृगं पश्येत्येव स्यात्तथा च पश्य मृगो धावतीति वाक्यस्योच्छेदः स्यात् । तमिति अध्याहारे वाक्यभेदो गौरवं च ।

न च वाक्यभेदे क्षतिविरह इति वाच्यम् । तथा सति 'तिङ्ङतिङः' इति सूत्रेऽतिङ इत्यस्य व्यावर्त्याभावेन वैयर्थ्यापत्तेः । निघातस्वरस्य च एकवाक्यताधीनत्वात् । एकवाक्यत्वाभावे तदनुपपत्तेः । न च हरेर्दशावतारा इत्यत्र का क्रिया अध्याहार्या । भवन्तीत्येवेहि । परं तु यत्रायोग्यता न तत्र लडर्थवर्तमानत्वान्वयः, अविवक्षितत्वात् । वर्तमानसामीप्ये वा लट् । सामीप्यं च भूतभविष्यद्रूपमत एव जयन्ति कृष्णस्य दशावतारा इति मुकुटः ।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।

इत्यादौ न लडर्थविवक्षेति मिश्राः । वर्तमानार्थकलट्प्रत्ययान्तत्वेनेत्यस्यालोकस्य तत्सामीप्यार्थकलट्प्रत्ययान्तत्वेनेति कण्टकोद्धारे मधुसूदनठक्कुराः ।

अत्र नैयायिकाः—निःक्रियस्यापि वाक्यस्य सत्त्वात्त्रिविधं वाक्यम् । तथा

हि सुबन्तसमूहः, तिङन्तसमूहः, सुबन्ततिङन्तसमूहश्च । यथा त्रयः कालाः, पचति भवति, चैत्रः पश्यति इत्यादि । एकवाक्यता त्वेकमुख्यविशेष्यकबोधजनकत्वेन, पश्य मृगो धावतीत्यादावपि तस्याक्षतेः । तथा हि धावनकर्तृमृगकर्मकदर्शनाश्रयस्त्वमित्यन्वयबोधाद्वाक्यार्थस्यात्र कर्मतासंसर्गेण दृशिक्रियायां भानं, वाक्यस्य चार्थवत्त्वाभावेन न प्रातिपदिकप्रयुक्तद्वितीयाद्यापत्तिः । न च वाक्यभेदप्रसङ्गः ।

किं च नहि क्रियाविनिर्मुक्तं वाक्यमस्तीति फणिनो धरणीभारविजृम्भणभणतिरेव ।

तथा हि—त्रयः काला इत्यादौ क्रियाविनिर्मुक्तवाक्यस्य सर्वजनीनत्वात् । नह्यत्र काऽपि क्रियाऽध्याहर्तुं शक्या । अपि च क्रियाविशेष्यत्वे 'प्रयाति पुरुषस्तस्य चरणावभिवादय' इत्यादौ तच्छब्देन पुरुषस्य परामर्शो न स्यात् । तस्य विशेषणत्वेनोपस्थितत्वात् । अन्यथा—

देशैते राजमातङ्गास्तस्यैवामी तुरङ्गमाः ।

इत्यादेरपि साधुत्वापत्तेः । इत्याद्यनल्पं जल्पन्ति स्म ।

अत्रेदं भावयामः—पश्य मृगो धावतीत्यत्र तादृशमृगस्य दर्शनक्रियायां कर्मतासंसर्गेणान्वयो न भवति । नामार्थधात्वर्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेन साक्षादन्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वात । अन्यथा तण्डुलः पचतीत्यादेरपि साधुत्वापत्तेः । न च धावनविशिष्टमृगस्य वाक्यार्थत्वेन नामार्थत्वाभावान्न दोष इति वाच्यम् । तथा सति मृगपदोत्तरं प्रथमापि न स्यात् । तस्या अपि प्रातिपदिकाश्रयत्वात् । किंच मृगकर्तृकोत्कटधावनस्य दृशिक्रियाया कर्मत्वेन विवक्षास्थल एव प्रयुक्तस्य पश्य मृगो धावतीत्यस्यैकवाक्यत्वं फणिसंमतं तच्चानुपपन्नमेव ।

फणिसंमतिस्तु हेलाराजेन स्पष्टीकृता । तथा हि—

सुबन्तं हि यथानेकं सुबन्तस्य विशेषणम् ।
तथा तिङन्तमप्याहुस्तिङन्तस्य विशेषणम् ॥

इत्युक्त्वा तेन धावनक्रियाया एव (कर्मत्व)विवक्षायां न प्रतीकार इत्याशयः । अन्यथा धावन्तं मृगं पश्येत्येव ब्रूयात् ।

किं च त्रयः काला इत्यत्र ज्ञायन्ते इति क्रियान्वयसंभवात् क्रियाविनिर्मुक्तवाक्योदाहरणस्यासंगत्यापत्तेः ।

किं च शृणु गर्जति मेघः, नटो गायति शृणु, घटोऽनश्यत् पश्येत्यादावप्यगतेश्च । एतेन प्रथमार्थ एव कर्मत्वमित्यपास्तम् ।

किं चैवं मृगे संख्यान्वयो न स्यात् । आख्यातोपस्थाप्यसंख्याप्रकारकान्वयबोधं प्रति मुख्यविशेष्यतया प्रथमान्तपदजन्योपस्थितेर्हेतुत्वात् । अन्यथा 'हंसीव धवला कीर्तिः' इत्यत्र हंस्यामपि संख्यान्वयप्रसङ्गः । मृगे संख्यानन्वये इष्टापत्तौ च 'पश्य धावति मृगाः' इत्यादेरपि साधुत्वापत्तेः ।

किं च 'पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा' 'चैत्रो ग्रामगतस्तत्र मैत्रः किं कुरुतेऽधुना' इत्यादिप्रयोगदर्शनात्तच्छब्देन विशेषणस्यापि परामर्शः । परं तु पदार्थतावच्छेदकरूपविशेषणस्य क्वचिन्न परामर्शः । तेन दृश्यैते राजमातङ्गा इत्यादौ न काऽप्यनुपपत्तिः । अत एवोत्सर्गोऽयं न नियमः । तदुक्तम्—' सर्वनाम्नामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शित्वम् ' इति दिक् । विवेचितं चेदमधस्तादवशिष्टं चोपरिष्टात्स्पष्टीभविष्यति ।

इति श्रीमहोपाध्यायमैथिलवंशमणेर्विमर्शः ।

अत्र नैयायिकाः प्रत्यवतिष्ठन्ते । मृगपदोत्तरं प्रथमापि न स्यादिति । धावनक्रियाविशिष्टस्य मृगस्य वाक्यार्थत्वेन नामार्थत्वाभावात्प्रातिपदिकाश्रयीभूता प्रथमाऽपि न स्यादित्यर्थः । तत्रोच्यते—मृगो धावतीत्याख्यातोक्तसंख्याके कर्तरि नामार्थे प्रथमा, पश्चात्पश्यतिक्रियान्तरे वाक्यार्थतयान्वयेऽपि प्राथमिकी प्रातिपदिकसंज्ञा निराकर्तुं न शक्येति को नाम प्रथमां निवारयितुमीष्टे इति ।

यत्तु मृगकर्तृकोत्कटधावनस्यैव दृशिक्रियायां कर्मतयान्वयो विवक्षित इति भाष्यकृदाशयवर्णनं, यदपि—

" सुबन्तं हि यथानेकं सुबन्तस्य विशेषणम् ।
तथा तिङन्तमप्याहुस्तिङन्तस्य विशेषणम् ॥ "

इति हेलाराजसंमतिप्रदर्शनं तदुभयमपि न विचारचारु । प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतस्तयोः प्रत्ययार्थः प्रधानमिति नियमात्, धात्वर्थनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासंबन्धेन शाब्दबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति विशेष्यतया प्रत्ययजन्योपस्थितिर्हेतुरिति कारणाभावादेकधात्वर्थप्रकारकापरधात्वर्थविशेष्यकान्वयबोध एव न संभवतीति ।

न च 'भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानि' इति यास्कमुनिविशेषवचसा आख्यातस्थले प्रत्ययार्थप्राधान्यं त्यज्यत इति वाच्यम् । आख्यातपदं तिङ्क्ष्वेव निरूढं न तु धातुष्विति । आख्यातार्थेषु संख्यावर्तमानत्वादिषु भावस्यैव संख्याकालातिरिक्ताख्यातार्थस्यैव प्राधान्यमिति तदर्थात् ।

वस्तुतस्तु प्रथमान्तार्थप्राधान्येऽपि मृगकर्तृकोत्कटधावनस्य कर्मतासंबन्धेन दृशिक्रियायां विशेषणतयान्वयो न विरुध्यते। यतो हि विशेष्यान्वयिनान्वयित्वमात्रं विशेषणत्वं धावनक्रियाविशेष्यो मृगस्तदन्वयिनी दर्शनक्रिया तदन्वयित्वरूपं विशेषणत्वं धावनक्रियाया अक्षतमिति न भाष्यकृदुक्तिविरोधो न वा हेलाराजोक्तिविरोध इति तत्त्वम् । स्पष्टं चेदं मीमांसायां सोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति, लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्तीत्यादौ ।

तथा हि पूर्ववाक्ये उष्णीषाणामपीष्टसाधनत्वे विशेषणतयाऽन्वयः । तत्र विशेषणत्वं विशेष्यान्वयिनान्वयित्वमेव । उष्णीषाणां विशेष्याः ऋत्विजस्तदन्वयि इष्टसाधनत्वं तदन्वयित्वमुष्णीषाणामिति । उत्तरवाक्ये तु पूर्ववाक्यलब्धस्योष्णीषविशिष्टऋत्विक्कर्तृकप्रचरणस्य नेष्टसाधनत्वेऽन्वयः । किं तु लौहित्यमात्रस्य । तत्रापि परंपरया तूष्णीषद्वारा ऋत्विग्रूपविशेष्यान्वयिना इष्टसाधनत्वेन लौहित्यान्वयस्वीकारादिति ।

यत्तु धावन्तं मृगं पश्येत्येव ब्रूयादिति तन्न । पर्यायशब्दानां प्रयोगे वक्तुरिच्छाया एव नियामकत्वेनेष्टापत्तेः । सर्वथातात्पर्याभावे मृगपदं नोच्चारयेत् । किं तु धावति पश्येत्येव ब्रूयादिति न काऽप्यनुपपत्तिरिति ।

यत्तु त्रयः काला इत्यत्र ज्ञायन्ते इति क्रियान्वयसंभवात् क्रियाविनिर्मुक्तवाक्यस्यासंगत्यापत्तेरिति तन्न । ज्ञानक्रियानाकाङ्क्ष्योः कति कालाः त्रयः काला इति प्रश्नोत्तरवाक्ययोः क्रियाविनिर्मुक्तत्वसंभवादिति ।

यत्तु शृणु गर्जति मेघः, नटो गायति शृणु, घटोऽनश्यत्पश्येत्यादावप्यगतेश्चेति । तन्न । 'सविशेषणे हि विधिप्रतिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्ये बाधे' इति न्यायाद्विशेष्येषु मेघनटघटेषु श्रवणदर्शनयोर्बाधाद्विशेषणेषु गर्जनगानाभावेषु श्रवणदर्शनान्वयसंक्रमादिति ।

यत्तु शृणु गर्जति मेघः इत्यादौ श्रवणे मेघकर्मकत्वाभावेन प्रथमार्थ एव कर्मत्वमित्यपास्तमिति तन्न । सविशेषणे हीति न्यायेन श्रवणे गर्जनविशिष्टमेघकर्मकत्वबाधेऽपि गर्जनकर्मकत्वस्यान्वयसंभवात्कर्मत्वं प्रथमार्थ इति सम्यगेवोक्तमिति । पदार्थत्वे प्रकारतया भानं विशेषः ।

वस्तुतस्तु सुब्विभक्तौ न लक्षणेति नियमात्कर्मत्वं प्रथमार्थो न भवति । किं च साधुत्वमात्रार्थिकायाः प्रथमायाः शक्याभावाच्छक्यसंबन्धरूपा लक्षणा न संभवत्येवेति तत्त्वम् ।

शङ्काः श्रूयन्ते भेर्यः श्रूयन्ते इति महाभाष्यकारप्रयोगात्, निध्वान-

(?)मश्रूयत पाञ्चजन्य इत्यभियुक्तप्रयोगाच्च सविशेषणे हीति न्यायस्य सर्वसमतत्वाच्चेति ।

यत्तु किं चैवं मृगे संख्यान्वयो न स्यात्, आख्यातोपस्थाप्यसंख्याप्रकारकान्वयबोधं प्रति मुख्यविशेष्यतया प्रथमान्तपदजन्योपस्थितेर्हेतुत्वात् अन्यथा 'हंसीव धवला कीर्तिः' इत्यत्र हंस्यामपि संख्यान्वयप्रसङ्गः । मृगे संख्यानन्वये इष्टापत्तौ च पश्य धावति मृगा इत्यादेरपि साधुत्वापत्तेरिति तन्न । एवं दर्शने धावनविशिष्टमृगस्य विशेष्यतयाऽन्वयस्वीकारे इत्यर्थः । मुख्यविशेष्यतया विशेषणत्वाभावे सति विशेष्यत्वं मुख्यविशेष्यत्वं तेनेत्यर्थः । तत्र मुख्येति न वक्तव्यं चैत्र एव पचतीत्यादौ व्यभिचारात् । अन्ययोगव्यवच्छेदकरूपैवकारार्थैकदेशेऽन्वये चैत्रस्य विशेषणत्वेन मुख्यविशेष्यतया प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिविषयत्वाभावाच्चैत्रान्यो न पचति चैत्रः पचतीति तदर्थात् । तथाच चैत्र एव पचतीत्यत्र चैत्रे संख्यान्वयार्थमाख्यातोपस्थाप्यसंख्याप्रकारकान्वयबोधं प्रति विशेष्यतया प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिर्हेतुरित्येव कार्यकारणभावोऽङ्गीकर्तुमुचितः । अन्यथा 'हंसीव कृष्ण ते कीर्तिः स्वर्गङ्गामवगाहते' इत्याद्युपमाने संख्यान्वयानङ्गीकारे स्वर्गङ्गावगाहनाश्रयत्वस्याख्यातार्थस्य संख्यायाश्च साधारणधर्मत्वानुपपत्तेः ।

हंस्य इव कृष्ण ते कीर्तिरित्यादीनामपि साधुत्वापत्तौ चालङ्कारिकमते वैरस्यापादकलिङ्गवचनभेदस्योपमानोपमेयनिष्ठस्य दुष्टत्वं न स्यात् । संख्याकालातिरिक्ताख्यातार्थे हि भावनान्वयिनि संख्यान्वय इति नियमात् । क्वचिद्विशेष्यस्य क्वचिद्विशेषणस्य परामर्शात्तात्पर्यविषयपरामर्शकत्वं तच्छब्दस्य नियतम् । परं तु पदार्थतावच्छेदकरूपविशेषणस्य क्वचिदपि न परामर्शः ।

इति वाक्यवादः समाप्तः ।

श्रीहरियशोमिश्रविरचिता

वाक्यदीपिका ।

(वाक्यवादटीका)

सुप्तिङन्तचयो वाक्यमिति प्रमाणानुसारेण सुबन्तचयत्वे सति तिङन्तचयत्वस्य मिलितस्य प्रत्येकं वा सुबन्तचयत्वादेर्वाक्यलक्षणत्वे परस्परमव्याप्तिः, पदसमूहमित्यस्य गौरश्वः पुरुषो हस्तीत्यादावतिव्याप्तिरित्याशयेन पृच्छति—अथेति। इदं लोके प्रसिद्धं, वाक्यं वाक्यपदवाच्यं, किं जिज्ञासितम् । तथा च लोके प्रसिद्धं वाक्यपदवाच्यं जिज्ञासाविषयीभूतमित्यन्वयबोधः । नामेति वाक्यालङ्कारे । एकतिङ् वाक्यमिति भाष्यादिति । एकत्वे सति तिङ्त्वं वाक्यत्वमित्युक्ते पचतीत्यस्यापि वाक्यत्वापत्तिः । एकः तिङ् यस्मिन्निति बहुव्रीह्याश्रयणे एकतिङ्घटितपदसमुदायत्वं वाक्यत्वमिति पर्यवसन्नं पचति भवतीत्यादावव्याप्तमित्याशयेन तदर्थमाह—एकेति । तेनेति एतादृशार्थकरणेन । अन्वयश्चास्य नैकवाक्यताव्याघात इत्यत्र तन्निषेधे। पचति भवतीत्यत्र विक्लित्त्यनुकूलैकाश्रयवृत्तिभावनाभिन्नैकाश्रयभवनानुकूला भावनेति बोधः । पश्य मृगो धावतीत्यत्र मृगाभिन्नैकाश्रयवृत्त्युत्तरदेशसंयोगानुकूलवेगजन्यविलक्षणव्यापारकर्मकचाक्षुषानुकूलव्यापारस्त्वदभिन्नैकाश्रयवृत्तिरित्यन्वयबोधः । नैकवाक्यतेति तिङन्तभेदप्रयुक्तानेकवाक्यतापत्तिर्नेत्यर्थः ।

ननु क्रियाविनिर्मुक्तवाक्यस्यापि सत्त्वेन तत्र तल्लक्षणाव्याप्तिरित्याशङ्क्य तद्वाक्यस्य प्रमाणविरुद्धत्वेनाव्याप्त्यभावादित्याह—नहीत्यादिना । ननु 'प्रयाति पुरुषस्तस्य चरणावभिवादये' इत्यादौ तच्छब्देन पुरुषपरामर्शानुरोधात्प्रथमान्तार्थस्यैव बोधमुख्यविशेष्यत्वस्वीकारेण निरुक्तलक्षणमयुक्तमित्याशयेन शङ्कते—अस्त्वित्यादिना । समाधत्ते—पश्य मृग इत्यादिना । ननु पश्येत्यादौ प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारेऽपि तमितिपदाध्याहारेण धावनानुकूलकृतिमान्मृगो मृगकर्मकदर्शनाश्रयस्त्वमिति बोधो न स्वीक्रियते । येन नानामुख्यविशेष्यकबोधजनकत्वेन वाक्यभेदः स्यात् । अपि तु धावनानुकूलकृतिमन्मृगनिष्ठकर्मतानिरूपकदर्शनाश्रयस्त्व-

मित्येव बोधस्तज्जनकतयैकवाक्यत्वक्षतेरभावात्कथमगतिस्तत्रेत्याशङ्क्य मृगपदार्थस्य दर्शने कर्मतासंबन्धेनान्वयबोधस्य—नामार्थस्य धात्वर्थेऽभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयबोधस्वीकारे तण्डुलः पचतीत्यादिप्रयोगस्य साधुत्वापत्त्या नामार्थप्रकारकभेदसंसर्गकबोधे विभक्तिजन्योपस्थितेः कारणत्वेन—अनुपपन्नत्वात् मृगपदार्थस्य कर्मताबोधार्थं मृगपदोत्तरं द्वितीयावश्यकीत्याशयेनाह—मृगस्येत्यादि। तत्र फलितमाह—द्वितीयायां चेत्यादि धावन्तं मृगं पश्येत्येवं स्यादित्यन्तेन। ननु तथा प्रयोगो भवत्येवेति न दोष इत्याशङ्क्य धावन्तं मृगं पश्येत्येवं स्यान्न तु पश्य मृगो धावतीति प्रयोगस्तथा च तस्योच्छेद एवानिष्टकर इत्याह—तथा चेति। ननु तत्र मृगमुख्यविशेष्यताकबोध एव स्वीक्रियते तमित्यध्याहारेण तथा च न तस्योच्छेद इत्यत आह—तमित्यध्याहार इत्यादि।

वाक्यभेदे इष्टापत्तिमाशङ्क्य परिहरति—न चेति। तथा सति वाक्यभेदे सति। अतिङन्तात्परं तिङन्तं निहन्यत इति 'तिङ्ङतिङः' इतिसूत्रार्थः। नन्वेकवाक्यत्वाभावेऽपि तिङन्तात्परस्यातिङ्ग्रहणव्यावर्त्यत्वसंभव इत्याशङ्क्य 'समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः' इति वचनेन तिङन्तेन सह तिङन्तस्यैकवाक्यतायामेवातिङ्इतिग्रहणाभावे निघातप्रसक्तिस्तद्वारणाय सूत्रे तद्ग्रहणमेकवाक्यत्वाभावे निघातप्रसक्तिरेव नेत्याह—निघातस्वरस्येत्यादि। एकवाक्यत्वाभावे तिङन्तेन सह तिङन्तस्यैकवाक्यत्वाभावे, तदनुपपत्तेः तिङन्तात्परस्य निघातप्रसक्त्यनुपपत्तेः, तथा चातिङ इतिग्रहणस्य वैयर्थ्यमिति भावः। ननु हरेरित्यादाववताराणां भूतभावित्वेन क्रियाध्याहाराभावेन तत्र तल्लक्षणाव्याप्तिरित्याशङ्क्य लडर्थस्याविवक्षितत्वेन भवन्तीत्यध्याहारसंभव इत्याह—भवन्तीत्यवेहीत्यादि अविवक्षितत्वादित्यन्तेन। हरिसंबन्धिदशावताराभिन्नबहुत्वावच्छिन्नाश्रयवृत्तिभवनानुकूला भावनेति बोधः। लडर्थविवक्षायामपि 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति वचनेन वर्तमानसमीपान्यतरनिष्ठा तादृशी भावनेति बोध इत्याह—वर्तमानसामीप्ये वेत्यादि। अत एव लडर्थाविवक्षणादेव सामीप्यार्थकत्वादेव वा। जयन्तीति। कृष्णसंबन्धिदशावताराभिन्नबहुत्वावच्छिन्नाश्रयवृत्तिवर्तमानसमीपनिष्ठोत्कर्षानुकूला भावनेति बोधः। अत एवेत्यस्य मिश्रा इत्यनेनाप्यन्वयः। वारिद इति। वारिदाभिन्नैकाश्रयवर्तिनी तृप्तिकर्मकप्राप्त्यनुकूला भावना वर्तमानकालिकीत्यन्वयबोध आश्रयणीयः, स च न संभवति तद्भावनाया भविष्यत्वात्। इह लोके पानीयदातुस्तृषा-

शान्तेः स्वयमुदपानेन विनाऽदर्शनात्तृप्तिः पारलौकिकी वक्तव्या, लडर्थो न विवक्षित इति भावः । अत एवेति ' मधुसूदनठक्कुराः ' इत्यत्राप्यन्वेति । 'अथ शब्दो निरूप्यते' इति चिन्तामणिस्थपदस्य व्याख्यानरूपालोकनाम-पक्षधरमिश्रकर्तृकग्रन्थस्य व्याख्या कण्टकोद्धार इति मधुसूदनकर्तृको ग्रन्थ इति बोध्यम् ।

त्रयः काला इत्यत्र त्रित्वविशिष्टाभिन्नाः काला इत्यन्वयबोधः । पचति भवतीत्यत्र पाकानुकूलकृतिर्भवनाश्रय इत्यन्वयबोधः । चैत्रः पचतीत्यत्र पाकानुकूलकृतिमांश्चैत्र इत्यन्वयबोधः । स्वार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपित-प्रकारताशालिबोधजनकपदसमभिव्याहृतपदत्वरूपस्य किंचित्पदार्थनिष्ठप्र-कारतानिरूपितस्वार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यताशालिबोधजनकतत्पदसमभिव्या-हृतपदत्वरूपस्य (वा) वाक्यत्वस्य पश्य मृगो धावतीत्यादावपि सत्त्वेन तमिति पदाध्याहाराभावादेकवाक्यत्वक्षतिविरह इत्याह—पश्य मृगो धावतीत्यादा-वपीति । तस्य एकवाक्यत्वस्य । ननु नामार्थप्रकारकभेदसंसर्गकबोधे विभ-क्तिजन्योपस्थितेः कारणत्वेन कथं धावतो मृगस्य कर्मतासंबन्धेन दृशिक्रि-यायामन्वयस्तत्र तज्जन्योपस्थितेरभावादतस्तदर्थे द्वितीयापेक्षिता, तथा च तादृशवाक्योच्छेद इत्याशङ्क्य वाक्यस्य प्रातिपदिकत्वाभावेन तदर्थप्रका-रकबोधस्य तज्जन्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वान्न द्वितीयापत्तिरित्याह—वाक्य-स्य चार्थवत्त्वाभावेनेत्यादि । अर्थवत्त्वाभावेन अर्थनिरूपितशक्तिलक्षणान्य-तरसंबन्धाभावेनेत्यर्थः । तथा चानुकूलतासंबन्धावच्छिन्नधावननिष्ठप्रकार-तानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्न—समवायसंबन्धावच्छिन्नकृतिनिष्ठप्रकारता-नि-रूपितविशेष्यत्वाभिन्नकर्मतासंबन्धावच्छिन्नमृगनिष्ठप्रकारता—निरूपितवि-शेष्यत्वाभिन्ननिरूपितत्वसंबन्धावच्छिन्नदर्शननिष्ठप्रकारता—निरूपितविशे-ष्यत्वाभिन्नस्वरूपसंबन्धावच्छिन्नाश्रयत्वनिष्ठप्रकारता—निरूपित—त्वंपदार्थ-निष्ठमुख्यविशेष्यताशाली बोधः ।

ननु क्रियाविनिर्मुक्तवाक्यस्य प्रमाणविरुद्धत्वेन वाक्यत्रैविध्यमसंगतमि-त्याशङ्क्याह—किंचेत्यादि ।

क्रियाविनिर्मुक्तवाक्यमेव दर्शयति—तथा हीत्यादिना । सार्वजनीन-त्वात् सर्वजनानुभवसिद्धत्वात् । नन्वत्रापि भवन्तीति क्रियाध्याहारः शक्य एव कर्तुमिति चेन्न, भूतभाविकालयोर्वर्तमानभवनाश्रयत्वबाधात् । न च जयन्त्यादाविव वर्तमानसामीप्यार्थकत्वं लट इति वाच्यम् । वर्त-मानसामीप्यस्य भूतभविष्यद्रूपस्य भूतभविष्यत्कालसंबन्धिभवना-

न्वयेऽपि वर्तमानसंबन्धिभवने तदन्वयासंभवात्। न च सामीप्यं वर्तमानसाधारणं निर्वक्तुं शक्यं, येन वर्तमानसंबन्धिनोऽपि भवनस्य ग्रहणं स्यात्। न च लटो वर्तमानसामीप्यं वर्तमानत्वं चार्थ इति वाच्यम् । शक्तिलक्षणाभ्यामेकेन शब्देन युगपदनेकार्थाप्रतीतेः । न च गङ्गायां घोषमत्स्यौ स्त इत्यत्र घोषमत्स्यान्वयानुरोधेन गङ्गापदेन प्रवाहतीरयोर्वृत्तिद्वयेनोपस्थितिदर्शनाल्लटा वर्तमानतत्सामीप्ययोस्तथैवोपस्थितिरस्त्विति वाच्यम् । युगपद्वृत्तिद्वयविरोध इति प्राचीनगाथाविरोधादित्येतदभिप्रेत्याह—न ह्यत्रेत्यादि । ननु तत्र लडर्थोऽविवक्षित एवेत्यत आह—अपि चेत्यादि । घटोऽयं तज्जातिरित्यादेः प्रामाण्यापत्तिवारणाय सर्वनाम्नां प्रधानोपस्थापकत्वावश्यकत्वं तथा च पुरुषाभिन्नैकाश्रयवृत्तिप्रयाणानुकूलो व्यापार इति बोधे पुरुषस्य विशेषणतया भानेन तस्य चरणावित्यत्र तच्छब्देन परामर्शो न स्यादतः प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोध एव स्वीकर्तव्य इत्याह—क्रियाया विशेष्यत्वे इत्यादिना । अन्यथा सर्वनाम्नां विशेषणोपस्थापकत्वे ।

नामार्थप्रकारकभेदसंसर्गकबोधे विभक्तिजन्योपस्थितेः कारणत्वेन तादृशमृगस्य कर्मतया दर्शनेऽन्वयासंभव इत्याह—पश्य मृगो धावतीत्यत्रेत्यादिना । दृशिधातुज्ञानजन्यचाक्षुषज्ञानोपस्थितिकृतो यो "धात्वाख्यातप्रातिपदिकजन्यगतिविशेषकृतिमृगोपस्थितिसहकृत—'धावति मृगः' इति वाक्यज्ञान—जन्य—'धावनानुकूलकृतिमान्मृगः' इत्याकारक"—बोधस्तत्सहकृतेन पश्य मृगो धावतीतिवाक्यज्ञानेन, कर्मतासंबन्धावच्छिन्नधावनकृत्यवच्छिन्नमृगनिष्ठप्रकारतानिरूपितचाक्षुषज्ञाननिष्ठविशेष्यताशालिशाब्दस्य जनने न मृगादिपदजन्योपस्थितिः सहकारिणी । अपि तु तादृशोपस्थितिसहकृत—'धावति मृगः'—इतिसमभिव्याहारजन्यधावनकर्तृमृगविषयकबोधस्य सहकारित्वमिति तादृशमृगस्य नामजन्योपस्थित्यविषयत्वेन तस्य च कर्मतया धात्वर्थेऽन्वये धात्वर्थनामार्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेन बोधोऽनुपपन्न इति नियमभङ्गरूपदोषो नेत्यभिप्रेत्याह—तत्र धावनेत्यादिना । तथा सति वाक्यार्थस्य धावनकृतिविशिष्टमृगस्य कर्मतया धात्वर्थेऽन्वये सति । प्रथमापीत्यपिना विभक्तिसामान्यप्रतिषेधः । मृगपदोत्तरं कापि विभक्तिर्न स्यादित्यर्थः । तत्र चापादकमप्रातिपदिकत्वादिति पूरणीयं तस्या अपीत्यादिग्रन्थानुरोधात् । यद्यपीदमापादनमसंगतं मृगपदस्य धातुप्रत्ययान्ताभिन्नत्वान्मृगत्वावच्छिन्नस्य सत्त्वेनार्थवत्त्वाच्च अप्रातिपदिकत्वादित्यापादकासिद्धेस्तथापि यादृशवाक्यार्थस्य धात्वर्थेऽन्वयस्तादृश-

वाक्योत्तरं विभक्तेरदर्शनेन दृशिधात्वर्थान्वयिनं नीलाभिन्नं घटमिति वाक्योत्तरमिव प्रकृतेऽपि धावनकृतिविशिष्टमृगार्थकमृगपदोत्तरं प्रथमापि न स्यादिति भावः। ननु यादृशसामग्रीसत्त्वे यत्कार्यं दृष्टं तदेव तत्रापाद्यं नीलं घटं पश्येत्यत्र तादृशसमभिव्याहारज्ञानादेव नीलघटकर्मत्वनिरूपकदर्शनान्वयबोधस्य दृष्टत्वेन नीलं घटमिति वाक्योत्तरं विभक्तिर्माभूत् पश्य मृगो धावतीति प्रथमान्तपदसमभिव्याहारज्ञानादेव धावनकर्तृमृगकर्मकदर्शनान्वयबोधो भवति न तु तद्विभक्तिव्यतिरेकत इति प्रथमापि न स्यादिति निर्युक्तिकमत आह—किं चेति। तच्च एकवाक्यत्वं च अनुपपन्नमेवेति धावनकर्तृमृगकर्मकदर्शनाश्रयस्त्वमिति बोधस्वीकारे फणिविवक्षितैकवाक्यत्वानुपपत्तिरिति भावः।

ननु मृगकर्तृकोत्कटधावनस्य दृशिक्रियायामन्वयः फणितात्पर्यविषय इत्येव कुतोऽवगम्यत इत्याशङ्क्य 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्' इत्यभिप्रायेण भाष्यार्थस्पष्टीकर्तृहेलाराजसंमतिमाह—फणिसंमतिस्त्विति। तेन मृग इति सुबन्तं दर्शने विशेषणं न, मृगकर्तृकोत्कटधावनं दर्शने विशेषणमिति हेलाराजेन स्पष्टीकरणेन। एवकारोत्तरं 'कर्मतया दृशिक्रियायामन्वयस्य' इति शेषः। विवक्षायामित्यनन्तरं 'प्रयुक्तस्य पश्य मृगो धावति इति वाक्यस्य' इति शेषः। न प्रतीकारः न निराकरणम्। तथा च तादृशमृगस्य कर्मतया तत्रान्वयस्वीकारे फणिसंमतवाक्यत्वानुपपत्तिरेव दोष इति भावः। ननु 'प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतस्तयोः प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यम्' इति नियमाद्धात्वर्थनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासंबन्धेनान्वयबुद्धिं प्रति विशेष्यतया प्रत्ययजन्योपस्थितिर्हेतुरिति कार्यकारणभावेन दर्शने प्रत्ययजन्योपस्थितेरभावेन धावनस्य तत्रान्वयो न संभवतीति मृगस्यैव तत्रान्वयेन तार्किकपक्ष एव समीचीन इति चेन्न, निरुक्तनियमादेव प्रकृत्यर्थप्रकारकबोधे विशेष्यतया प्रत्ययजन्योपस्थितेः कारणत्वेन कर्मत्वोपस्थित्यर्थं द्वितीयापेक्षा। तथा च पश्य मृगो धावतीति वाक्योच्छेदापत्तेरित्याह—अन्यथेति। कर्मत्वोपस्थित्यर्थं द्वितीयास्वीकारे इति तदर्थः।

तथा च सुबन्तस्थल एव तादृशन्यायश्चरितार्थस्तिङन्तस्थले धात्वर्थविशेष्यकान्वयबोध एव स्वीकरणीय इति लडर्थविवक्षायामपि भूतभविष्यद्वर्तमानविषयकज्ञाने वर्तमानकालिकत्वान्वयसंभवेन क्रियाविनिर्मुक्तं वाक्यमसंगतमित्याह—किं चेति।

प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारे दोषान्तरमाह–किं चेति। 'शृणु गर्जति मेघः' इत्यत्र गर्जनाश्रयमेघकर्मकश्रवणाश्रयस्त्वमिति नैयायिकमते बोधः। स च न संभवति शब्दस्यैव श्राव्यत्वेन मेघस्याश्राव्यत्वात्। मेघाभिन्नैकाश्रयवृत्तिगर्जनकर्मकश्रवणं त्वदभिन्नैकाश्रयकमिति वैयाकरणमते बोधः। स च समीचीन एव। 'नटो गायति शृणु' इत्यत्र गानाश्रयनटकर्मकश्रवणाश्रयस्त्वं इति तार्किकमते बोधः। स च न संभवति नटस्याश्राव्यत्वात्। नटाभिन्नैकाश्रयवृत्तिगानकर्मकश्रवणं त्वदभिन्नैकाश्रयकमिति वैयाकरणमते बोधः। स च यथार्थ एव। 'घटोऽनश्यत्पश्य' इत्यत्र चातीतोत्पत्तिकनाशप्रतियोगिघटकर्मकदर्शनाश्रयस्त्वमिति न्यायमते बोधः। स च न संभवति घटस्य नष्टत्वेन तद्दर्शनासंभवात्। घटाभिन्नैकप्रतियोगिकातीतोत्पत्तिकनाशविषयकदर्शनं त्वदभिन्नैकाश्रयकमिति वैयाकरणमते बोधः। स च प्रमैव। तथा च न्यायमते तत्र तत्राव्याप्तिरेवेति भावः। एतेन शृणु गर्जतीत्यादेरयोग्यत्वापादनेन। प्रथमार्थ इति। तथा च पश्य मृगो धावतीत्यत्र प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारेऽपि नामार्थधात्वर्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयबोधोऽव्युत्पन्न इति नियमभङ्गो नास्ति। धावनकर्तृमृगनिष्ठप्रथमार्थविषयतानिरूपकदर्शनाश्रयस्त्वमित्याकारकान्वयबोधस्वीकारेण कर्मतासंबन्धेन धावनकर्तृमृगस्य दर्शनक्रियायामनन्वयादिति भावः।

ननु क्रियामुख्यविशेष्यकान्वयबोधस्वीकारे 'प्रयाति पुरुषस्तस्य चरणावभिवादये' इत्यादौ तच्छब्देन पुरुषपरामर्शो न स्यात्। प्रथमान्तार्थस्य पुरुषस्याख्यातार्थविशेषणत्वेन मुख्यविशेष्यत्वाभावाद्घटोऽयं तज्जातिरित्यादेः प्रामाण्यापत्तिवारणाय तच्छब्दस्य मुख्यविशेष्योपस्थापकत्वस्वीकारादतः प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोध एव स्वीकर्तव्य इत्यत आह–किं चेति। एवं धावनकर्तृमृगकर्मकदर्शनाश्रयस्त्वमिति प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारे कुतः संख्यान्वयस्तत्र न स्यादित्यत आह—आख्यातोपस्थाप्येत्यादि। तत्रायमभिप्रायः—तार्किकमते कृतेराख्यातार्थतया कर्तुरनभिधानाद्देवदत्तेन पचतीत्यादिप्रयोगापत्तिवारणायाख्यातार्थभावनान्वय्यन्वयिसंख्यायामनभिहितायामित्यस्य 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इत्यनभिहिताधिकारीयसूत्रार्थत्वेन स्वीकारेणाख्यातोक्तकर्तरि कर्मणि च तदुक्तसंख्याया अन्वय इति वक्तुमशक्यत्वेन विशेष्यतयाख्यातोपस्थाप्यसंख्याप्रकारकान्वयबोधं प्रति प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिरितरविशेषणत्वतात्पर्याविषयीभूता-

र्थनिष्ठविशेष्यतालक्षणमुख्यविशेष्यतासंबन्धेन हेतुरिति स्वीकरणीयम् । तथा च पश्य मृगो धावतीत्यत्र मृगे इतरविशेषणत्वतात्पर्यविषयीभूतार्थत्वेन निरुक्तसंबन्धेन तदुपस्थितेरभावान्मृगे संख्यान्वयानुपपत्तिर्दोष इति । ननु वैयाकरणमतेऽपि मृगस्याभेदसंबन्धेन तिङर्थविशेषणत्वेन तदुपस्थाप्यसंख्यान्वयः कथमिति चेन्न । तन्मते तथा कार्यकारणभावानङ्गीकारात् । तन्मते कीदृशः कार्यकारणभाव इति चेदित्थम् 'फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः । फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम् ॥' इत्यत्र फलं विक्लित्त्यादि व्यापारस्तु भावनाऽभिन्ना साध्यत्वेनाभिधीयमाना क्रिया । धात्वर्थं निरूप्य तिङर्थमाह—आश्रये त्विति । फलाश्रयं कर्म, व्यापाराश्रयः कर्ता । तत्र फलव्यापारयोर्धातुलभ्यत्वान्न तिङस्तदंशे शक्तिः । पदार्थं निरूप्य वाक्यार्थं निरूपयति—फले इत्यादि । विक्लित्त्यादिफलं प्रति व्यापारः प्रधानं विशेष्यमित्यर्थः । तिङर्थाः कर्तृकर्मसंख्याकालास्तत्र कर्ता व्यापारे विशेषणं, कर्म तु फले विशेषणं,संख्या कर्तृप्रत्यये कर्तरि, कर्मप्रत्यये कर्मणि विशेषणं,कालस्तु व्यापारे विशेषणं न तु संख्यावत्कर्तृकर्मणोः,अतीतभावनके कर्तरि पचतीत्यापत्तेः, नापि फले फलानुत्पत्तिदशायां व्यापारसत्त्वे पचतीत्यनापत्तेः । तथा चाख्यातोपस्थाप्यसंख्याप्रकारकबोधं प्रत्याख्यातजन्यकर्तृकर्मोपस्थितिर्हेतुरिति कार्यकारणभावः फलितः । एवं च चैत्रस्तण्डुलं पचतीत्यत्र चैत्राभिन्नैककर्तृकस्तण्डुलभूतकर्मनिष्ठविक्लित्त्यनुकूलवर्तमानकालिको व्यापार इति बोधः । चैत्रेण तण्डुलः पच्यते इत्यत्र तण्डुलाभिन्नैककर्मनिष्ठविक्लित्त्यनुकूलवर्तमानकालिकचैत्रकर्तृको व्यापार इति बोधः । इत्थं च प्रकृते 'मृगो धावति' इत्यत्र मृगाभिन्ने कर्तरि तदुपस्थितेः सत्त्वेन न तत्र संख्यान्वयानुपपत्तिरिति भावः । ननु मुख्येत्यनिवेश्य प्रथमान्तपदजन्योपस्थितेर्हेतुत्वस्वीकारान्न संख्यान्वयानुपपत्तिरित्यत आह—अन्यथेति । मुख्यविशेष्यतासंबन्धेन तादृशोपस्थितेर्हेतुत्वानङ्गीकारे इति तदर्थः । तथा च तार्किकमते तत्र संख्यान्वयानुपपत्तिरेव । संख्यानन्वये इष्टापत्तिं वारयति—मृगे इत्यादि साधुत्वापत्तेरित्यन्तेन ।

ननु 'प्रयाति पुरुषस्तस्य' इत्यत्र तच्छब्देन पुरुषपरामर्शो न स्यादिति दूषणं तु वर्तत एवेति चेन्न, तच्छब्दस्य विशेषणोपस्थापकत्वस्यापि कुत्रचिद्दृष्टत्वेन विशेषणीभूतस्यापि पुरुषस्य तच्छब्देन परामर्शसंभवादित्याह—किं चेति । ननु तर्हि घटोऽयं तज्जातिरित्यादावपि प्रामाण्यं स्यात्तत्रापि तत्पदेन घटत्वपरामर्शसंभवादित्यत आह—परं त्विति । न

परामर्श इति । पदोपस्थितिप्रकारस्य तत्पदेन परामर्शासंभवेऽपि तद्भिन्नवि-शेषणस्य तत्पदेन परामर्शे बाधकाभावादिति भावः । अथैवं 'दशैते' इत्यादौ तस्यैवेतितच्छब्देन राजपरामर्शे बाधकाभावेन तत्साधुत्वापत्तिरि-तिचेदिष्टापत्तिमाह—तेनेति । पदोपस्थितिप्रकारभिन्नस्य विशेषणस्यापि परा-मर्शसंभवेनेति तदर्थः । ननु पदार्थतावच्छेदकस्य तत्पदेन परामर्शो नास्ती-त्युक्तम् । तर्हि 'दशैते राजमातङ्गाः' इत्यत्र राजपदस्य राजसंबन्धिलाक्ष-णिकतया राज्ञः पदार्थतावच्छेदकत्वात्तत्पदेन तस्य कथं परामर्श इति चे-त्तर्हि 'पटोलपत्रं पित्तघ्नम्' इत्यत्रापि पटोलपदस्य पटोलसंबन्धिलाक्ष-णिकतया पटोलस्य पदार्थतावच्छेदकत्वेन तस्येतितच्छब्देन परामर्शानु-पपत्तिः । न च तत्र विग्रहसमासयोः समानार्थकत्वानुरोधेन षष्ठीतत्पु-रुषे पूर्वपदलक्षणाया अस्वीकारेण पटोलपदस्य पटोलमात्रपरतया पदार्थ-तावच्छेदकत्वाभावात्तच्छब्देन परामर्शः संभवतीति वाच्यम् । प्रकृ-तेऽपि राजपदस्य राजमात्रपरतया पदार्थतावच्छेदकत्वाभावेन तच्छब्देन परामर्शसंभवात् । ननु पटोलस्य पत्रमिति विग्रहवाक्यात्पटोलसंबन्धप्रकार-कबोधो जायते पटोलपत्रमिति समासात्तु तत्र तल्लक्षणाऽस्वीकारे पटोल-प्रकारकबोधो जायेत । तथा च विग्रहवाक्यसमासवाक्ययोः समानप्र-कारकबोधजनकत्वरूपसमानार्थकत्वभङ्गापत्तिस्तद्वारणाय पटोलपदस्य प-टोलसंबन्धे लक्षणा । एवं च पटोलस्य पदार्थतावच्छेदकत्वेन तस्येतितत्प-देन परामर्शो न स्यात् । न च पटोलसंबन्धि पत्रमितिवत्पटोलपत्रमित्यादावपि पटोलपदार्थानन्वयापत्तिर्नामार्थयोरिति व्युत्पत्तेरिति वाच्यम् । घटः पटो न, चैत्र इव मैत्रो गच्छतीत्यादौ नञर्थे पटपदार्थस्य प्रतियोगित्वसंबन्धेन इवार्थे चैत्रपदार्थस्य स्वनिरूपितत्वसंबन्धेनान्वयबोधस्वीकारेण निपातातिरिक्तना-मार्थस्याभेदातिरिक्तसंबन्धेन शाब्दबोधोऽव्युत्पन्न इति नियमसंकोचवत्स-मस्तनिपातातिरिक्तनामार्थस्याभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयबोधोऽव्युत्पन्न इति नियमसंकोचस्वीकारात् । न च निपातस्थले व्युत्पत्तिसंकोचेऽनुभवो मानं समासस्थले व्युत्पत्तिसंकोचे मानाभाव इति वाच्यम् । अत्रापि व्युत्पत्ति-संकोचे विग्रहसमासयोः समानार्थकत्वप्रवादस्यैव मूलत्वात् । तस्मात्पटोल-पदस्य पटोलसंबन्धे लक्षणास्वीकारेण पटोलस्य पदार्थतावच्छेदकतया तस्येति तत्पदेन परामर्शानुपपत्तिर्वर्तत एवेति चेन्न। 'घटमानय' इत्यत्र कर्मतासंबन्धे-नानयनोपरि घटोऽप्यन्वेतीत्येकदेशिमते स्वीकारेण पटोलस्य पत्रमि-त्यत्र पटोलसंबन्धप्रकारकबोध इव पटोलप्रकारकपत्रविशेष्यकोऽप्यन्व-

यबोधो भवति। तथा च विग्रहसमासयोः पटोलप्रकारकपत्रविशेष्यकबोधस्यैव स्वीकारेण पटोलपत्रमित्यादौ पटोलादिपदस्य लक्षणाभावेन पटोलस्य पदार्थतावच्छेदकत्वाभावेन तस्येतितत्पदेन तत्परामर्शानुपपत्तेरभावात्। एवं च 'दृशैते राजमातङ्गाः' इत्यादौ तस्यैवेतितत्पदेन राज्ञः पदार्थतावच्छेदकत्वाभावेन परामर्शः संभवतीति भावः। अथवा पटोलस्य पत्रं राज्ञो-मातङ्गा इत्यादिव्यासस्थले यथा प्रकृत्यर्थान्वितषष्ठ्यर्थप्रकारकबोधो जायते तथा पटोलपत्रं राजमातङ्गा इत्यादावपि लुप्तषष्ठीस्मरणेन पटोलाद्यन्वितसंबन्धप्रकारकपत्रादिविशेष्यकबोधस्वीकारेऽपि नामार्थयोरभेदेनैवान्वय इति नियमभङ्गो न। एवं च पटोलादेः पदार्थतावच्छेदकत्वाभावेन तत्पदेन परामर्शसंभवः।

वस्तुतस्तु नामार्थयोरभेदेनैवेति व्युत्पत्तेः संकोचे मानाभावेन लुप्तषष्ठीस्मरणस्य नैयत्याभावेन च संबन्धिनि लक्षणाया आवश्यकत्वे समानविषयकबोधजनकत्वमित्येव विग्रहसमासयोः समानार्थकत्वं न तु समानप्रकारकबोधजनकत्वरूपं तत्। आरूढवानरो वृक्ष इत्यत्रारूढो वानरो यमिति विग्रहाद्यत्कर्मकारोहणकर्ता वानर इति बोधः। समासाच्च वानरकर्तृकारोहणकर्मीभूतो वृक्ष इति बोधः। एवं प्राप्तोदको ग्राम इत्यादावपि। तत्र प्राप्तमुदकं यमिति विग्रहाद्यत्कर्मकप्राप्तिकर्तृ उदकमिति बोधः, समासाच्चोदककर्तृकप्राप्तिकर्मीभूतो ग्राम इत्यन्वयबोधस्तथा च तत्र तत्र भिन्नप्रकारकबोधस्यैवोदयेन व्यभिचारात्। अथ बहुव्रीहेरविग्रहतया नास्य विग्रहवाक्यत्वं, चित्रगुरित्यत्र चित्रा गौर्यस्येति हि समासार्थकथनं न तु विग्रहः। समस्यमानपदैरेवार्थकथनस्य विग्रहत्वादिति चेन्न। नहि तत्र विग्रह एव नास्तीति, समासारम्भकवाक्यस्यैव विग्रहत्वात्। किंतु बहुव्रीहौ तस्यासाधुत्वं तत्र समस्यमानपदैरेव विग्रहस्य साधुत्वात्। अत एव बहुव्रीहौ विग्रहस्यासाधुत्वज्ञापनाय तत्र नित्यसमासत्वाभिधानम्, अत एवाविग्रहो नित्यसमासः अस्वपदविग्रहो वा नित्यसमास इति तल्लक्षणम्। तत्र समासघटकीभूतपदसमानार्थकपदान्तरेणार्थप्रतिपत्त्यनुकूलो व्यापारोऽस्वपदविग्रहः। ननु राजपुरुष इत्यादौ राजपदस्य संबन्धिनि लक्षणास्वीकारे विशेषणविशेष्यवाचकपदार्थयोरभेदान्वयबोधेनाभेदे कर्मधारय इत्यनेनाभेदबोधस्थले कर्मधारयविधानात् कर्मधारयापत्तिरिति चेन्न, समासात्पूर्वं विशेषणविशेष्यवाचकपदयोः समानार्थकयोर्यत्राभेदेनान्वयबोधकत्वं तत्रैव कर्मधारयविधानात्। एवं च पदार्थतावच्छेदकरूपविशेषणस्येत्यस्य शक्यतावच्छे-

दकरूपविशेषणस्येत्यर्थः। तेन शक्यतावच्छेदकभिन्नविशेषणस्यापि परामर्शसंभवेन। तथा च राजमातङ्गा इत्यादौ राजपदस्य राजसंबन्धिनि लक्षणायां राज्ञः पदार्थतावच्छेदकत्वेऽपि शक्यतावच्छेदकत्वाभावान्न परामर्शानुपपत्तिरिति भावः। न च वैयाकरणमते राजपुरुष इति समुदायस्य राजसंबन्धिपुरुषे शक्तिरेव। एवं च राज्ञः शक्यतावच्छेदकत्वेन तत्र परामर्शो न स्यादिति वाच्यम्, शक्यतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणरूपविशेषणस्येत्यस्य तदर्थत्वेन राज्ञस्तथा विशेषणत्वाभावात्तस्यैवेतितत्पदेन परामर्शानुपपत्तेरभावात्। अत एव उक्तस्थले तत्पदेन विशेषणस्यापि परामर्शोदेव। उत्सर्गः असति बाधके प्रवर्तमानो विधिः सति बाधके क्वचित्त्यज्यते। न नियम इति तच्छब्देन मुख्यस्यैव परामर्श इति नियमो नेत्यर्थः। तत्र संमतिमाह—तदुक्तमित्यादिना। अवशिष्टमिति विमर्श इत्यन्तो ग्रन्थः स्पष्टः।

एवं वैयाकरणमतमुपन्यस्य नैयायिकमते, 'वाक्यार्थस्य दृशिक्रियायां कर्मतयान्वये मृगपदोत्तरं प्रथमापि न स्यात्' इत्युद्भावितदूषणमुद्धर्तुमुपन्यस्यति—मृगपदोत्तरमित्यादि न स्यादित्यर्थ इत्यन्तेन। नैयायिकमते कृतेराख्यातार्थतया कर्तुरनभिधानाद्देवदत्तेन पचतीत्यादिप्रयोगापत्तिवारणाय विशेष्यतासंबन्धेनाख्यातोपस्थाप्यसंख्याप्रकारकान्वयबोधं प्रति प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिरितरविशेषणत्वतात्पर्याविषयीभूतार्थनिष्ठविशेष्यतासंबन्धेन हेतुरिति स्वीकरणीयम्। तथा च मृगो धावतीत्यत्र धावनानुकूलकृतिरूपभावनान्वयिनि मृगे धावतीत्याख्याताभिहितसंख्यान्वयानुरोधेन प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्वस्याप्यावश्यकतया मृगपदोत्तरं प्रथमा दुर्निवारेत्याशयेनाह—तत्रोच्यत इत्यादिना।

मास्तु प्रथमानुपपत्तिरुदाहृतभाष्यकाराशयविरोधो हेलाराजसंमतिविरोधश्च दुष्परिहर इत्यत आह—यत्त्विति।

ननु 'प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः' इत्ययं न्यायः सुबन्तस्थल एव तण्डुलमित्यादौ द्वितीयार्थकर्मत्वे प्रकृत्यर्थतण्डुलप्रकारकान्वयबोधस्य विशेष्यतासंबन्धेनोत्पादस्तत्र प्रत्ययभूतद्वितीयाजन्योपस्थितेः सत्त्वाच्चरितार्थ इति तिङन्तस्थले धात्वर्थविशेष्यकान्वयबोध एव स्वीकरणीयः, भावप्रधानमाख्यातमिति धात्वर्थभावनामुख्यविशेष्यकान्वयबोधतात्पर्यकयास्कमुनिवचनानुरोधादित्याशयेनाह—न चेति। भावप्रधानमाख्यातमित्यत्राख्यातपदं न तिङन्ते रूढं शास्त्रकारैस्तत्राप्रयोगात्, प्रयोगे च तत्र गौणत्वात्, तिङ्क्ष्वव शास्त्रकाराणां प्रसिद्धप्रयोगदर्शनात्, धात्वर्थभावनामुख्यविशेष्य-

कान्वयबोधजनकमाख्यातान्तमिति वचनं भ्रान्तप्रलपितमिति मन्वानः सिद्धान्ती भावप्रधानमाख्यातमित्यस्य संख्याकालातिरिक्ताख्यातार्थस्यैव भावतया तादृशार्थविशेष्यकान्वयबोधं प्रत्याख्यातं कारणमित्येवंविधका- र्यकारणभावपरत्वात् 'प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतस्तयोः प्रत्ययार्थः प्रधा- नम्' इत्यस्य प्रत्ययार्थविशेष्यकशाब्दबोधं प्रति प्रत्ययः कारणमित्येवं- विधकार्यकारणभावपरतया यास्कवचनगताख्यातपदस्य तिङ्सुप्सा- धारणरूपेण प्रत्ययत्वेन पर्यवसानमेव युक्तम् । तण्डुलं पचतीत्यादौ द्विती- यार्थकर्मत्वविशेष्यकबोधस्य प्रत्ययार्थभावनाविशेष्यकबोधस्य च दर्शनादि- त्याशयवानाह—आख्यातपदमिति ।

नन्वेवमप्युत्कटधावनस्यैव दृशिक्रियायां कर्मत्वं फणितात्पर्यविषयीभूत- मिति तन्मतविरोध इत्यत आह—वस्तुतस्त्विति। नन्वेवं विशेष्यान्वयिनाऽन्व- यित्वरूपं विशेषणत्वं न भाष्यसंमतमपि तूत्कटधावनस्य साक्षाद्दर्शनक्रियायां विशेषणत्वमित्याशङ्क्य तादृशविशेषणत्वस्यापि तान्त्रिकैः स्वीकारादित्याश- येन तान्त्रिकसंमतिमाह—स्पष्टं चेदमिति ।

पार्थसारथिमिश्रमते विध्यर्थस्येष्टसाधनत्वरूपत्वात् 'यजेत' इत्यादिस्थले याग इष्टसाधनमित्यन्वयबोधस्वीकारेण 'दध्ना जुहोति' इत्यत्र गुण- विधौ दधीष्टसाधनमित्यन्वयबोधः, धात्वर्थांशेऽनुवादः; होमनिष्ठं दधिकरण- कत्वमिष्टसाधनमिति वान्वयबोधः । तथा च प्रकृते 'सोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति' इत्यत्र प्रचरणाङ्गभूताः सोष्णीषा ऋत्विज इष्टसाधनमित्य- न्वयबोधस्वीकारे उष्णीषविशिष्टर्त्विजामिष्टसाधनत्वान्वये उष्णीषस्यापीष्ट- साधनत्वान्वयः । एवं 'लोहितोष्णीषा' इत्यत्रापि प्रचरणाङ्गभूता लोहितो- ष्णीषविशिष्टर्त्विज इष्टसाधनमित्यन्वयबोधस्वीकारे लौहित्यविशिष्टोष्णी- षस्य ऋत्विग्द्वारेष्टसाधनतान्वये लौहित्यस्यापीष्टसाधनत्वान्वय इत्यङ्गी- कारः। तथा च प्रकृतेऽपि धावनक्रियाविशिष्टमृगस्य दृशिक्रियाकर्मत्वे धावन- स्यापि दृशिक्रियाकर्मत्वं भाष्यसंमतमक्षतमेवेति भावः । भट्टमतेऽपि 'सोमेन यजेत' इत्यत्र सोमवता योगेनेष्टं भावयेदिति वाक्यार्थस्वीकारे सोमवि- शिष्टयागस्य भावनायां करणत्वेनान्वये यागद्वारा सोमस्यापि करणत्वेना- न्वये बाधकाभावेन विशेष्यान्वय्यन्वयित्वरूपं विशेषणत्वमेषामपीष्टमेवे- त्युदाहृतस्थले द्वयोरपि सोष्णीषैः ऋत्विग्भिः प्रचरणं भावयेल्लोहितोष्णीषै- र्ऋत्विग्भिः प्रचरणं भावयेदित्यन्वयबोधस्वीकारेण विशेषणीभूतोष्णीषस्य ऋत्विग्द्वारा लोहितस्य चोष्णीषद्वारा भावनाकरणत्वस्येष्टत्वेन विशेष्यान्व-

ध्यन्वयित्वरूपविशेषणत्वमव्याहतमिति । धावनस्यापि मृगद्वारा दृशिक्रियायां कर्मतासंबन्धेनान्वयित्वमव्याहतमिति न विरोधः । न च भट्टमते सोमेन यजेतेत्यादौ यागस्यैव करणत्वं न तु सोमस्यापि, अन्यथा यागस्य सोमवत्त्वं सोमेन यजेतेति वाक्यान्तरं विना नोपपद्यत इत्यर्थाक्षिप्तवाक्येन 'सोमेन यागं भावयेत्' इत्यन्वयबोधस्वीकारोऽनुपपन्नः स्यादिति वाच्यम् ।

'विधाने वानुवादे वा यागः करणमिष्यते'

इति वार्तिकेन 'दध्ना जुहोति' इत्यादिस्थलेऽपि केवलगुणविधौ दधिमता होमेनेष्टं भावयेदिति वाक्यार्थबोधस्य स्वीकारस्तथा चात्रापि दधिमत्त्वं होमे दध्ना जुहोतीति वाक्यान्तरमन्तरेण नोपपद्यत इत्यर्थाक्षिप्तवाक्येनान्वयबोधेऽपि वार्तिकोक्तन्यायानुसारेण धात्वर्थस्यैव करणत्वेन दध्यादिकरणकभावनाया अलाभेन श्रूयमाणगुणविध्यनुपपत्तिरिति विशिष्टस्य यागस्य भावनायां करणत्वेनान्वये विशेषणस्यापि करणत्वेनान्वय इत्यङ्गीकारस्यैव युक्तत्वाद्वाक्यान्तरकल्पने गौरवाच्चेति विशेष्यान्वय्यन्वयित्वरूपं विशेषणत्वं मीमांसायां स्पष्टमित्यभिप्रेत्य विशेष्यान्वय्यन्वयित्वरूपं विशेषणत्वमाह—तथा हीत्यादि स्वीकारादित्यन्तेन । तत्रापि उत्तरवाक्येऽपि, परंपरया स्वाश्रयाश्रयत्वसंबन्धेन, अन्वयश्चास्य उष्णीषद्वारा ऋत्विग्रूपविशष्ये । तथा च लौहित्यस्य स्वाश्रयाश्रयत्वसंबन्धेन स्वविशेष्यः ऋत्विक्पदार्थस्तदन्वयिनेष्टसाधनत्वेनान्वय इति फलितम् ।

ननु धावनाश्रयमृगस्य दृशिक्रियायां कर्मत्वेनान्वये 'पश्य मृगो धावति' इति न ब्रूयाद्धावन्तं मृगं पश्येत्येव ब्रूयादित्याशयेनाक्षिपति—यत्त्विति । नीलं घटं पश्य नीलघटं पश्येति व्याससमासयोः प्रयोगे वक्तृतात्पर्यस्यैव नियामकताया दृष्टत्वात्पश्य मृगो धावति धावन्तं मृगं पश्येति प्रयोगद्वैविध्येऽपि वाक्यार्थभेदस्य नियामकत्वाभावेन वक्तुरिच्छाया एव नियामकत्वमित्याशयेन समाधत्ते—तन्न पर्यायेत्यादिना । सति वक्तुस्तात्पर्ये धावन्तं मृगं पश्येत्यत्रापि प्रयोगे इष्टापत्तेर्नैतावता पश्य मृगो धावतीत्यस्य हानिर्नह्यभेदार्थकपर्यायाणां मध्ये एकप्रयोगे सत्यपरः प्रयोगः केनचिन्निषेद्धुं शक्यत इति भावः । ननु धावन्तं मृगं पश्य, पश्य मृगो धावतीत्यनयोरेकत्र मृगान्वितकर्मत्वस्यापरत्र कर्मत्वसंबन्धेन मृगस्य दर्शनक्रियायामन्वयविवक्षेत्यर्थभेदोऽस्त्येवेति धावनक्रियायाः कर्मत्वेन दृशिक्रियायामन्वयविवक्षायां पश्य मृगो धावतीत्येव प्रयोगः कर्तव्य इत्यत आह—सर्वथेति । न काप्यनुपपत्तिरिति । धावनक्रियाविशिष्टमृगस्य कर्मत्वेनान्वये भाष्यकारा-

दिविवक्षाविरोधो धावतीत्यत्र शत्रापत्तिर्मृगपदोत्तरं द्वितीयापत्तिरित्येवमा-द्यनुपपत्तिः कापि नास्तीति भावः ।

ननु प्रतिङन्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधजनकपदसमुदायत्वं वाक्यत्वमित्य-त्र तान्त्रिकैस्तिङन्तसमूहः सुबन्तसमूह इत्यादिक्रमेण वाक्यं त्रिधा विभ-ज्य त्रयः काला इत्यादिक्रमेणोदाहृत्य त्रयः काला इत्यत्र तिङन्तपदाभावे-नाव्याप्तावभिहितायां ज्ञायन्त इति पदाध्याहारेण त्रित्वविशिष्टाभिन्नकाला-भिन्नाश्रयवृत्ति(?विषयक)ज्ञानमित्यन्वयबोधस्वीकारेण वैयाकरणोक्तवा-क्यलक्षणस्य निर्दुष्टत्वात् ‘ पश्य मृगो धावति ’ इत्यत्रापि क्रियायाः कर्मतया दृशिक्रियायामन्वयेऽपि बाधकाभाव इत्याशङ्क्य समाधातुमनुवदति—य-त्त्विति । ‘त्रयः काला ज्ञायन्ते’ इत्यत्र त्वदुक्तलक्षणस्याव्याप्त्यभावेऽपि कति काला इति प्रश्ने त्रयः काला इत्युत्तरं दृश्यते। तत्र क्रियाध्याहारे प्रयोज-नाभावाल्लक्षणमव्याप्तमित्याशयेनाह—तन्नेति । क्रियाविनिर्मुक्तत्वसंभवा-दिति । न च कति कालास्त्रयः काला इति प्रश्नोत्तरवाक्ययोरपि भवन्ति ज्ञायन्त इति पदाध्याहारसंभवान्नोक्तलक्षणमव्याप्तमिति वाच्यम् । कति काला इति कालत्वव्याप्यप्रकारविशेषजिज्ञासया प्रश्नकरणे तज्जिज्ञा-सानिवर्तनाय प्रकारविशेषज्ञानजनकोत्तरवाक्यस्यैवाकाङ्क्षितत्वेनानाकाङ्क्षि-तक्रियाध्याहारस्यानुचितत्वादिति भावः ।

ननु क्रियामुख्यविशेष्यकान्वयबोधमङ्गीकृत्य प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्य-कबोधस्वीकारे ‘शृणु गर्जति मेघः’ ‘ नटो गायति शृणु ’ ‘घटोऽनश्यत्पश्य’ इत्यादौ गर्जनाश्रयमेघस्य गानकर्तृनटस्य श्रावणकर्मत्वासंभवात् , वर्त-माननाशप्रतियोग्युत्पत्तिकनाशप्रतियोगिघटस्य दृश्यर्थकर्मत्वासंभवाच्च क्रि-यामुख्यविशेष्यकान्वयबोध एव स्वीकर्तव्य इतीमां शङ्कां समाधातुमनुव-दति—यत्तु शृण्विति । ‘ सविशेषणे हि विधिनिषेधौ प्रवर्तमानौ ’ इति न्यायेन गर्जनस्य गानस्य नाशस्य च श्रुदृश्यर्थान्वयसंभवेन न काप्य-नुपपत्तिरित्याह—तन्न, सविशेषणे हीत्यादिना । न च सविशेषणे हीति न्यायमाश्रित्य समाधानं न संभवति तादृशन्याये प्रमाणाभावादिति वाच्यम् । स्वर्गी ध्वस्तः, शिखी ध्वस्तः, इत्यादि प्रयोगदर्शनाद्ध्वस्त इत्यत्र क्त-

१ श्रावणं श्रवणेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षं श्रुधात्वर्थः । २ वर्तमानः वर्तमानकालिकः यो नाशः ध्वंसः तत्प्रतियोगिनी उत्पत्तिर्यस्य सः वर्तमाननाशप्रतियोग्युत्पत्तिकः अतीतोत्पत्तिक इतियावत् । इदं नाशविशेषणम् । अनेन वर्तमानध्वंसप्रतियोग्युत्पत्तिकत्वमतीतत्वमिति दर्शितम् । अतीतत्वं भूतत्वमित्यनर्थान्तरम् ।

प्रत्ययार्थध्वंसप्रतियोगिनः शिखिनः स्वर्गिणश्चाविनाशेन तत्रान्वयासंभवेन शिखास्वर्गयोस्तदन्वयस्वीकारात् । नच ध्वंसप्रतियोगिनः प्रथमान्तार्थस्य शिखायां स्वर्गे चापदार्थे कथमन्वयः, यत्किंचित्पदार्थनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासंबन्धेनान्वयबोधं प्रति पदजन्यपदार्थोपस्थितिर्मुख्यविशेष्यतासंबन्धेन कारणमित्येतादृशार्थक–'पदार्थः पदार्थेनान्वेति न तु पदार्थैकदेशेन'- इति न्यायादिति वाच्यम् । एकदेशान्वयस्यापि क्वचिद्दृष्टत्वात् । ननु क्व दृष्टमितिचेत्–शरैः शातितपत्रश्चैत्रस्य गुरुकुलमित्यादौ दर्शनात् । ननु घटो नित्यः पशुरपशुरित्यादावपि नित्यत्वाश्रयघटत्ववान्, पशुभिन्नपशुत्ववानित्याद्यन्वयबोधे बाधकाभावेन तेषामपि प्रामाण्यं स्यादिति चेन्न । शरैरित्यादेः साकाङ्क्षत्वादेकदेशान्वयसंभवेऽपि घटो नित्य इत्यादेर्नित्यसाकाङ्क्षत्वाभावेनाप्रामाण्यात् । ननु स्वर्गी ध्वस्त इत्यादौ नित्यसाकाङ्क्षत्वाभावात्कथमेकदेशान्वय इति चेन्न । अन्वयबोधस्य तात्पर्याधीनत्वेन प्रकृते एकदेशान्वयतात्पर्यस्य, प्रामाण्यान्यथानुपपत्त्या स्वीकारात् । न च घटो नित्य इत्यादेरपि तात्पर्यसद्भावे एकदेशान्वयसंभवे प्रामाण्यापत्तिरिति वाच्यम् । सति तात्पर्ये इष्टत्वात् । अत एव हि यत्र पदार्थेऽन्वयासंभवस्तत्र भावप्रधाननिर्देशपरतयापि निर्वाहो ग्रन्थकृतां संगच्छते, सर्वतो बलवती ह्यन्यथानुपपत्तिरिति न्यायात् । नच शिखी ध्वस्त इत्यादौ शिख्यादिपदस्य शिखामात्रलाक्षणिकत्वेन शिखा ध्वंसप्रतियोग्यभिन्नेत्यन्वयबोधस्वीकारे 'शिखा ध्वस्ता' 'स्वर्गो ध्वस्त' इत्यादिवाचकशब्दप्रयोगस्यैव 'स्वायत्ते शब्दप्रयोगे किमित्यवाचकं प्रयुञ्ज्महे' इति न्यायेन संभव इति वाच्यम् । लाक्षणिकमात्रस्यैव विलयप्रसङ्गात् । न च लाक्षणिकं द्विविधं निरूढं प्रयोजनवच्च । निरूढं कुशलादि । प्रयोजनवद्गङ्गायां घोष इत्यादि । तत्र 'स्वर्गी ध्वस्तः' इत्यादिकं न प्रयोजनवत्, प्रयोजनस्य शैत्यपावनत्वादिप्रतीतेरिवात्र प्रयोजनप्रतीतेरभावात्; नापि निरूढमनादितात्पर्यकल्पनागौरवापत्तेरिति वाच्यम् । स्वर्गी ध्वस्त इत्यादिप्रामाणिकप्रयोगदर्शनेनानादितात्पर्यकल्पनायाः प्रामाणिकत्वेन गौरवस्यादोषत्वात् । ननु शिख्यादिपदस्य शिखामात्रलक्षणास्वीकारे तत्पदजन्यपदार्थोपस्थितिमुख्यविशेष्यत्वेन शिखाया विशेषणत्वाभावात् सविशेषणे हीति न्यायानुसारेणोदाहरणत्वं तत्र न संगतमिति शिख्यादिपदस्य शिखादिविशिष्टधर्मिबोधकत्वमित्येव स्वीकरणीयम् । तथा च पदार्थैकदेशीभूतायां शिखायां ध्वंसप्रतियोगिरूपपदार्थान्वये पदार्थः पदा-

र्थेनान्वेतीति नियमस्य व्यभिचारो दुर्वार एवेति चेन्न। चैत्रस्य गुरुकुलमित्यादौ व्यभिचारवारणायासत्यामाकाङ्क्षायामिति विशेषणवत्स्वर्गी ध्वस्त इत्यादावेकदेशान्वयानुरोधेनासत्येकदेशान्वयप्रयोजकानादितात्पर्ये इति विशेषणस्य पदार्थः पदार्थेनेत्यत्रावश्यकत्वात्। नन्वत्र बोधः कीदृशः ध्वंसप्रतियोगिस्वर्गवान्पुरुष इत्येतादृश इति चेत्स्वर्गशालिन्यपि स्वर्गी ध्वस्त इत्यादिप्रयोगापत्तेः। वर्तमानध्वंसप्रतियोग्युत्पत्तिकस्वर्गवानित्यन्वयबोध इति चेत्स्वर्गोत्पत्तिद्वितीयक्षणेऽपि स्वर्गी ध्वस्त इति प्रयोगापत्तेः। पुरुषवृत्तिः स्वर्गो वर्तमानध्वंसप्रतियोगीति बोध इति चेत्पदार्थोपस्थितावुपसर्जनस्य विशेष्यत्वे विशेष्यस्य च विशेषणत्वे घटो नित्य इत्यादेरपि घटवृत्तिघटत्वं नित्यमित्याद्यन्वयबोधसंभवेन प्रामाणिकत्वापत्तेः। स्वर्गविशिष्टो ध्वंसप्रतियोगीति चेद्विशेष्ये ध्वंसप्रतियोगित्वस्य बाधेनाप्रामाण्यापत्तेः। विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्थले विशेषणतावच्छेदकस्य परंपरासंबन्धेन विशेष्यान्वयवद्विशिष्टे वैशिष्ट्यमिति बोधे वर्तमानध्वंसप्रतियोगिनो विशेषणे साक्षात्संबन्धेन विशेष्ये परंपरासंबन्धेनान्वये बाधकाभावान्नायोग्यतेति चेत्स एव संबन्धो न ज्ञायते येन विशेष्येऽन्वयः स्यात्। अत्रोच्यते—स्वाभिन्नाश्रयत्वं विशेष्यसंबन्धः। न च घटो नित्य इत्यादेरपि स्वाभिन्नाश्रयत्वसंबन्धेन नित्यस्यापि घटेऽन्वये बाधकाभावेन प्रामाण्यं स्यादिति वाच्यम्। 'नहि निमित्तमस्तीत्यारोप आरोपे सति निमित्तानुसरणम्' इति न्यायेन प्रामाणिक—'स्वर्गी ध्वस्तः'—इत्यादिप्रयोगनिर्वाहमात्रस्यैवाश्रयणीयत्वात्। अन्यथा लोहितः स्फटिक इत्यादौ लौहित्यस्य स्फटिके परंपरासंबन्धेन भानवत्स्वाश्रयसंयोगित्वेन तस्याकाशे सत्त्वेन लोहित आकाश इत्यादेरपि प्रामाण्यापत्तिः। अतः स्फटिकत्वविशिष्टानुयोगिकत्वविशिष्टपरंपरायाः लौहित्यनिरूपितसंसर्गत्वं स्वीक्रियते न त्वाकाशाद्यनुयोगिकत्वविशिष्टपरंपरायाः, लोहित आकाश इत्याद्यभियुक्तप्रयोगाभावात्। तथा च प्रकृते पुरुषानुयोगिकत्वविशिष्टस्वाभिन्नाश्रयत्वस्य ध्वंसप्रतियोगिनिरूपितसंसर्गत्वं 'स्वर्गी ध्वस्तः' इत्याद्यभियुक्तप्रयोगात्, न तु घटाद्यनुयोगिकत्वविशिष्टस्वाभिन्नाश्रयत्वस्य नित्यनिरूपितसंसर्गत्वं

---

१ अत्र शिखिपदार्थे शिखाविशिष्टे ध्वस्तपदार्थस्य वर्तमानध्वंसप्रतियोगिनः वैशिष्ट्यं बुध्यते। तत्र विशेषणे शिखायां ध्वस्तपदार्थस्य साक्षात्संबन्धेन अभेदेनान्वयः; विशेष्ये शिखाविशिष्टे परंपरया स्वाभिन्नाश्रयत्वसंबन्धेन। तत्र स्वं ध्वस्तपदार्थः वर्तमानध्वंसप्रतियोगी, स्वाभिन्ना शिखा, तदाश्रयत्वस्य शिखाविशिष्टे देवदत्तादौ सत्त्वान्न काचिदनुपपत्तिरित्यर्थः।

'घटो नित्यः' इत्याद्यभियुक्तप्रयोगाभावात् । एवं च सविशेषणे हीत्यादिन्यायस्य विशेष्ये विधिनिषेधयोः साक्षात्संबन्धेन बाधे सति विशेषणे साक्षात्संबन्धेन, विशेष्ये परंपरासंबन्धेन पर्यवसानमित्यर्थः। इत्थं च शृणु गर्जति मेघ इत्यादावपि गर्जनाश्रयमेघकर्मकश्रावणाश्रयस्त्वमिति बोधस्वीकारे मेघस्य साक्षात्संबन्धेन श्रावणेऽन्वयासंभवेन गर्जने विशेषणे साक्षात्संबन्धेन श्रावणकर्मत्वं, गर्जनविशिष्टमेघे विशेष्ये स्वाश्रयाश्रयत्वसंबन्धेनेति गर्जनविशिष्टमेघस्य कर्मत्वसंबन्धेन श्रावणेऽन्वयसंभवेन नायोग्यता, न वा गर्जनकर्मकश्रावणानन्वयापत्तिः। नन्वेवमपि स्वाभिन्नाश्रयत्वसंबन्धेन ध्वंसप्रतियोगिनो नामार्थस्य स्वर्गिणि नामार्थेऽन्वयस्वीकारे नामार्थयोरिति व्युत्पत्तिभङ्ग इति चेन्न। निपातस्थल इवात्रापि व्युत्पत्तिसंकोचात्। न च निपातस्थले व्युत्पत्तिसंकोच उभयवादिसिद्धो नात्र तथेति वाच्यम्। गत्यन्तराभावेनैतत्संकोचस्याप्युभयवादिसिद्धत्वात्। न च सविशेषणे हीति न्यायस्य, स्वर्गी ध्वस्त इत्यादौ धर्मिवाचकशब्दस्य धर्ममात्रतात्पर्यग्राहकत्वेन, स्वर्गो ध्वंसप्रतियोगीत्यन्वयबोधस्वीकारेण, नामार्थयोरिति व्युत्पत्तेः, पदार्थः पदार्थेनेति व्युत्पत्तेश्चासंकोचसंभवे, संकोचाश्रयणेन परंपरासंबन्धेनान्वयबोधस्वीकरणमन्याय्यमिति वाच्यम्। स्वर्गी ध्वस्त इत्यादौ धर्मिग्रहणवैयर्थ्यापत्तेः। तथा च स्वाभिन्नाश्रयत्वसंबन्धेन ध्वंसप्रतियोगिनो धर्मिण्यन्वयविवक्षास्थले स्वर्गी ध्वस्त इति, स्वर्गमात्रे ध्वंसप्रतियोग्यन्वयविवक्षास्थले च स्वर्गो ध्वस्त इति प्रयोगः लौकिकानां शास्त्रकाराणां च विवक्षाभेदेन। अथ शब्दो निरूप्यते, श्रुतोऽयमर्थः, शङ्खः श्रूयते इत्यादिप्रयोगदर्शनात् तत्र शब्दो निरूपणविषय इत्यन्वयबोधे निरूपणस्य ज्ञानानुकूलव्यापारतया तस्य निर्विषयत्वेऽपि तज्जन्यं ज्ञानविषयत्वमादायैव शब्दे निरूपणविषयत्वं स्वीक्रियते, श्रुतोऽयमर्थ इत्यत्रार्थे श्रु-धात्वर्थकर्मत्वाभावेऽपि श्रावणविषयशब्दजन्यज्ञानविषयत्वमादायैवार्थे श्रु-धात्वर्थकर्मता, शङ्खः श्रूयत इत्यत्र शङ्खस्य तत्कर्मत्वाभावेऽपि शङ्खध्मानस्य तत्कर्मतया तदवच्छेदकशङ्खस्यापि तत्कर्मत्वमभ्युपगम्यते। इत्थं च शृणु गर्जति मेघ इत्यादौ गर्जनविशिष्टमेघस्यापि श्रावणविषयीभूतगर्जनाश्रयतया श्रावणकर्मत्वाभ्युपगमे गर्जनस्य मुख्यकर्मत्वं मेघस्य तु गौणकर्मत्वमिति विवक्षयैतादृशप्रयोगे, गर्जनादेरेव श्रावणविषयत्वरूपविवक्षितार्थलाभे बाधकाभाव इत्यभिप्रेत्य 'विशेषणेषु गर्जनगानाभावेषु श्रवणदर्शनान्वयसंभवात्'

इत्युक्तं, न तु गर्जनादेरेव श्रु—धात्वर्थकर्मत्वाभिप्रायेण। तथा सति वैयाकरणमतप्रवेशापत्तेः। ननु मेघगर्जनं शृणु, मृगधावनं पश्येत्यादिप्रयोगेऽपि च गर्जनादेः श्रावणकर्मत्वं, तत्कर्मीभूतगर्जनाश्रयतया मेघस्य परंपरया श्रावणकर्मत्वं विवक्षितं संभवति, एवं धावनस्य मृगादेश्च दर्शनविषयत्वं संभवतीति, शृणु गर्जति मेघः पश्य मृगो धावतीत्येवंविधवक्रप्रयोगाश्रयणमृजुबुद्धीनां न शोभावहमिति चेन्न। साहित्यशास्त्रवासनावासितहृदयानां कुटिलमार्गगमनेनैव चमत्कारोदयदर्शनात्।

ननु पश्य मृगो धावतीत्यत्र धात्वर्थनामार्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयबोधस्य तण्डुलः पचतीत्यादिप्रयोगप्रामाण्यवारणायाव्युत्पन्नतया मृगस्य कर्मतासंबन्धेन दर्शनेऽन्वयो न संभवतीत्याशङ्क्य केनचिन्मृगपदोत्तरप्रथमायाः कर्मत्वमर्थस्तत्र मृगस्याधेयतासंबन्धेनान्वयः, कर्मत्वस्य निरूपकत्वसंबन्धेन दर्शनेऽन्वय इत्युक्तम्; तद्दूषयितुं शृणु गर्जति मेघ इत्यादौ श्रवणे मेघपदोत्तरप्रथमार्थकर्मत्वस्यायोग्यतयान्वयासंभवादित्युपाध्यायवंशमण्युक्तमनुवदति—यत्त्विति। अपास्तमित्यत्र हेतुभूतस्यैतेनेत्यस्य श्रवणे मेघकर्मत्वाभावेनेति व्याख्यानभूतं द्रष्टव्यम्। खले कपोतन्यायेन राजपुरुषप्रवेशन्यायेन वा शाब्दबोधाभ्युपगमेन गर्जनस्याश्रयत्वे आश्रयत्वस्य मेघे मेघस्य कर्मत्वे कर्मत्वस्य च श्रुधात्वर्थे अन्वयेन गर्जनाश्रयत्वविशिष्टमेघस्य कर्मत्वे तादृशमेघनिष्ठकर्मत्वस्य च श्रु—धात्वर्थेऽन्वये वा सविशेषणे हीति न्यायेन विशेषणांश एव विवक्षाभ्युपगमेन, गौणकर्मत्वस्य मेघेऽप्यबाधितत्वादित्याशयेन दूषयति—तन्नेति। कर्मत्वबाधेऽपीति गर्जनविशिष्टमेघे मुख्यकर्मत्वबाधेऽपीत्यर्थः। गर्जनकर्मत्वस्याप्यन्वयसंभवादिति गर्जनविशिष्टमेघस्य श्रु—धात्वर्थगौणकर्मत्वमपि गर्जनस्य तत्कर्मत्वविवक्षायामेवोपपद्यते इति गर्जनकर्मत्वस्य श्रु—धात्वर्थे बोधसंभवादित्यर्थः। श्रावणे मेघकर्मत्वबाधेऽपि गर्जनकर्मत्वस्यान्वयसंभवादिति यथाश्रुते, प्रथमार्थकर्मत्वे गर्जनस्यान्वयो न तु गर्जनविशिष्टमेघस्येत्यर्थो भासते स चानुपपन्नः, प्रथमार्थे प्रातिपदिकार्थस्य मेघस्यैवान्वयस्य युक्ततया गर्जनस्याप्रातिपदिकार्थत्वेनान्वयायोग्यत्वात् प्रत्ययानामिति व्युत्पत्तेः। एवं च मृगो धावतीत्यत्र धात्वर्थनामार्थयोरभेदातिरिक्तकर्मत्वरूपसंबन्धेनान्वयानुपपत्त्या मृगपदोत्तरं प्रथमायाः कर्मत्वार्थकत्वस्वीकरणं शृणु गर्जति मेघ इत्यादौ मेघादेः श्रु—धात्वर्थकर्मत्वासंभवेन न समीचीनमिति 'भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः'

इति न्यायेन वंशमणिदूषणं न सम्यगेवेत्यभिप्रायेणाह—कर्मत्वं प्रथमार्थ इति सम्यगेवोक्तमिति । सम्यक्त्वं चेह वंशमण्युक्तदूषणाग्रस्तत्वमेव, न तु सर्वथा निर्दुष्टत्वं सुविभक्ताविति वक्ष्यमाणदूषणग्रासात् । 'कर्तृकर्मणोः कृति' इति षष्ठ्याः कर्मत्वेनानुशासनवत्प्रथमायाः कर्मत्वेनानुशासनाभावात् । अन्यथानुपपत्त्या च स्वारसिकलक्षणाश्रयस्य प्रथमायाः कुत्रचिदशक्तत्वेन स्वीकर्तुमशक्यत्वात् । न च 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' इत्यनुशासनेन प्रथमाविभक्तेरपि लिङ्गादौ शक्तत्वमस्त्येवेति वाच्यम् । तत्सूत्रस्य प्रथमाव्यञ्जकत्वमात्राभिप्रायकत्वादिति । ननु पश्य मृगो धावतीत्यत्र कर्मत्वसंबन्धेन मृगस्य दर्शनक्रियान्वयापेक्षया कर्मत्वस्य प्रथमार्थत्वे को विशेषः । न च नामार्थधात्वर्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयोऽनुपपन्न इति व्युत्पत्तिविरोधवारणं, तस्य तदर्थत्वे विशेष इति वाच्यम् । यादृशसामग्रीसत्त्वे यादृशान्वयबोधोऽनुभवसिद्धस्तादृशसामग्र्यां तद्बोधस्यापादनीयतया तण्डुलः पचतीति समभिव्याहारे तण्डुलकर्मकपाकविशेष्यकान्वयबोधस्याननुभूतत्वेनातिप्रसङ्गाभावात् । पश्य मृगो धावतीत्यत्र मृगकर्मकदर्शनविशेष्यकान्वयबोधस्यानुभवसिद्धत्वेन कर्मतासंबन्धेन मृगप्रकारकान्वयबोध एव स्वीकरणीय इति तादृशव्युत्पत्त्यस्वीकारेऽपि दोषाभावादित्यत आह—पदार्थत्व इति । निरुक्तस्थले मृगकर्मकदर्शनविशेष्यकान्वयबोधस्य मृगकर्मत्वप्रकारकदर्शनविशेष्यकत्वेनाप्युपपत्तौ प्रथमान्तार्थस्य कर्मतासंबन्धेन दर्शनेऽन्वयस्य व्युत्पत्तिविरुद्धस्यापि स्वीकारासंभवादिति भावः ।

ननु विशेषानुशासनं विनान्यविभक्त्यर्थेऽन्यविभक्तिलक्षणास्वीकारे तण्डुलं पचतीति(वत्)तण्डुलः पचतीत्यत्रापि लक्षणया प्रथमायाः कर्मत्वार्थकत्वसंभवेन तण्डुलकर्मत्वप्रकारकपाकविशेष्यकान्वयबोधः संभवतीति । तथा च भारतस्य श्रवणं व्यासस्य कृतिरित्यत्रापि कर्तृकर्मणोः कृतीत्यनुशासनं विनापि भारतकर्मकश्रवणं व्यासकर्तृककृतिरिति कर्मत्वादिप्रकारकान्वयबोधानुरोधेन षष्ठ्याः कर्मत्वाद्यर्थे लक्षणासंभवेनानुशासनं व्यर्थं स्यादित्यभिप्रायेणाह—वस्तुतस्तु विभक्ताविति । नन्वन्वयानुरोधेनैव विभक्तेर्लक्षणा, कर्तृकर्मणोः कृतीत्यनुशासनं तु द्वितीयातृतीययोर्निवृत्त्यर्थमिति न वैयर्थ्यमित्यत आह—किं चेति । शक्याभावादिति । प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यादिष्वर्थेषु निरुक्तसूत्रस्य प्रातिपदिकादिकस्य तात्पर्यग्राहकतया प्रथमाया अर्थविशेषाशक्ततया शक्यसंबन्धरूपलक्षणा न संभवतीति भावः ।

ननु शृणु गर्जति मेघ इत्यादौ मेघकर्तृकगर्जनस्य साक्षात्कर्मतासंबन्धेन श्रु—धात्वर्थान्वयसंभवेन प्रथमतो गर्जनस्य मेघेऽन्वयमङ्गीकृत्य तद्द्वारा धात्वर्थान्वयस्वीकारः 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' इति न्यायेन दूरतस्त्याज्य एवेत्यत आह—शङ्खाः श्रूयन्त इत्यादि। ध्मायमानाः शङ्खाः श्रूयन्त इत्यर्थः। भेर्यः श्रूयन्ते शब्दायमाना भेर्यः श्रूयन्त इत्यर्थः। तथा च ध्मानविशिष्टाः शङ्खाः श्रवणकर्मत्वाश्रयीभूताः, ध्मानविशिष्टशङ्खाभिन्नबहुत्वावच्छिन्नकर्मवृत्तिश्रवणानुकूलो व्यापारः; शब्दविशिष्टभेर्यः श्रवणकर्मत्वाश्रयीभूताः, शब्दविशिष्टभेर्यभिन्नबहुत्वावच्छिन्नकर्मवृत्तिश्रवणानुकूलो व्यापार इत्याद्यन्वयबोधस्वीकारे सविशेषणे हीति न्यायेन शङ्खविशेषणीभूतशब्दे श्रु—धात्वर्थकर्मत्वस्यान्वयस्वीकारस्यावश्यकतया शृणु गर्जति मेघ इत्यादावप्युक्तन्यायेनान्वयबोधस्वीकारे बाधकाभाव इति भावः। ननु शङ्खाः श्रूयन्त इत्यादौ शङ्खादिपदस्य ध्मायमानशङ्खादौ लक्षणाया आवश्यकत्वे शङ्खादिशब्दे शङ्खादिपदस्य लक्षणास्वीकारेणापि तत्र साक्षाच्छ्रु—धात्वर्थकर्मत्वान्वयसंभवेन सविशेषणे हीतिन्यायो नावतरतीति कथं तन्न्यायेन प्रकृते निर्वाह इत्यत आह—निध्वानमश्रूयत पाञ्चजन्य इत्यादि। तत्र हि निरुक्तविशेषणविशिष्टनिध्वानाश्रयीभूतपाञ्चजन्याभिन्नैककर्मवृत्त्यतीतोत्पत्तिकश्रवणानुकूलो व्यापार इति, जनकर्तृकातीतोत्पत्तिकश्रवणकर्मत्वाश्रयीभूतो निरुक्तविशेषणविशिष्टनिध्वानाश्रयीभूतः पाञ्चजन्यः, इत्येवंप्रकारेणान्वयबोधस्यावश्यकतया सविशेषणे पाञ्चजन्ये श्रवणकर्मत्वबाधेन तद्विशेषणे निध्वाने तत्कर्मत्वपर्यवसानमिति सविशेषणे हीति न्यायस्वीकार आवश्यक इति, शृणु गर्जति मेघ इत्यादावपि प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारेऽपि तन्न्यायेन निर्वाह इति भावः।

ननु पश्य मृगो धावतीत्यत्र धावनानुकूलकृतिनिष्ठ—समवायसंबन्धावच्छिन्नप्रकारता—निरूपितविशेष्यत्वाभिन्नमृगनिष्ठ—कर्मतासंबन्धावच्छिन्नप्रकारता—निरूपितविशेष्यत्वाभिन्न—स्वविशिष्टकर्मत्वसंबन्धावच्छिन्नधावननिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वा—ऽभिन्नदृश्यर्थनिष्ठस्वनिरूपितत्वसंबन्धावच्छिन्नप्रकारता—निरूपितविशेष्यत्वाभिन्नाश्रयत्वनिष्ठ—स्वरूपसंबन्धावच्छिन्नप्रकारता—निरूपितयुष्मत्पदार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यताशाली धा-

---

१ स्वं धावनम्। अनेन धावनस्य धर्मिपारतन्त्र्येण दृश्यर्थे भानमुक्तम्।

वनकर्तृमृगकर्मकदर्शनाश्रयस्त्वमिति बोधो जायत इत्युक्तम् । शृणु गर्जति मेघ इत्यादावपि गर्जनाश्रयत्वनिष्ठस्वरूपसंबन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितमेघनिष्ठविशेष्यताभिन्नकर्मतासंबन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नस्वविशिष्टकर्मत्वसंबन्धावच्छिन्नगर्जननिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नस्वनिरूपितत्वसंबन्धावच्छिन्नश्रु—धात्वर्थनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नस्वरूपसंबन्धावच्छिन्नाश्रयत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितत्वंपदार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यताशाली बोधो गर्जनविशिष्टमेघकर्मकश्रवणाश्रयस्त्वमिति, निध्वानाश्रयशङ्खोऽतीतोत्पत्तिकश्रवणकर्मत्वाश्रय इत्याद्यन्वयबोधः स्वीकर्तव्यः । स च 'वह्निना सिञ्चेत्' इत्यादौ सेके वह्निकरणकत्वान्वय इव बाधितः, श्रवणे स्वविशिष्टमेघविषयकत्वबाधेन गर्जनस्य धर्मिपारतन्त्र्येण श्रवणेऽन्वयासंभवादिति चेन्न । साक्षात्संबन्धेन गर्जनविशिष्टमेघस्य श्रु—धात्वर्थकर्मत्वबाधेऽपि स्वाश्रयगर्जनवत्त्वसंबन्धेन मेघे कर्मत्वान्वये बाधकाभाव इति गर्जनविशिष्टं मेघं धर्मिणं द्वारीकृत्य तद्विशेषणगर्जनस्य निरुक्तसंबन्धेन श्रुधात्वर्थेऽन्वयसंभवात् । ननु शृणु गर्जति मेघ इत्यादौ तार्किकमतेऽपि सविशेषणे हीति न्यायेन योग्यत्वव्यवस्थापनेऽपि मेघादौ गर्जतीत्येकवचनोपस्थाप्यसंख्याया अन्वयो न स्यात् । पचति चैत्र इत्यादावाख्यातार्थकृतिभूतभावनामुख्यविशेष्य एव चैत्रे तदुपस्थाप्यसंख्यान्वयस्य दृष्टतया गर्जनाश्रयमेघस्येह श्रवणक्रियायां विशेषणतया मुख्यविशेष्यत्वाभावात् । इतराविशेषणस्यैव मुख्यविशेष्यत्वात् । अन्यथा चैत्रो मैत्र इव गच्छतीत्यत्र मैत्रनिरूपितसादृश्याश्रयचैत्रो गमनानुकूलकृतिमानेक इत्यन्वयबोधे आख्यातोपात्तसंख्यायाश्चैत्र इव मैत्रेऽप्यन्वयः स्यात्, प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्वस्य तत्र सत्त्वात् । न चेतराविशेषणनिष्ठविशेष्यतासंबन्धेन प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिर्विशेष्यतासंबन्धेनाख्यातार्थसंख्यान्वयबोधं प्रति हेतुरिति स्वीकारेण प्रकृते मैत्रे निरुक्तसंबन्धेन तादृशोपस्थितेरभावान्न तत्र तदन्वयापत्तिरिति वाच्यम् । शृणु गर्जति इत्यादावपि मेघादौ तदुपस्थितेर्निरुक्तसंबन्धेनाभावेन तदुपात्तसंख्यानन्वयापत्तेर्दुर्वारत्वात् । न च देवदत्तेन सुप्यत इत्येकवचनोपात्तैकत्वस्योपस्थितस्याप्यन्वयाभाववद् गर्जतीत्येकवचनोपस्थाप्यैकत्वान्वयो मेघे नेष्यत एवाविवक्षितत्वादिति वाच्यम्, 'शृणु गर्जति मेघाः' इत्यादिप्रयोगापत्तेरित्याशयवाननुवदति—यत्त्वित्यादि साधुत्वापत्तेरित्यन्तेन । कीर्तिरित्यत्र भातीति क्रिया-

ध्याहारः । साधुत्वापत्तेरिति । धावति मृगा इत्याख्यातोपस्थाप्यसंख्याया अविवक्षितत्वेनैकवचनोपस्थाप्यैकत्वस्य मृगेष्वन्वयाभावेन तादृशवाक्यस्यायोग्यत्वाभावादित्यर्थः । मुख्यविशेष्यतासंबन्धेन प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिर्विशेष्यतासंबन्धेनाख्यातार्थसंख्यान्वयबोधं प्रति हेतुरिति न स्वीक्रियते, येन मृगादेः कर्मतया दृशिक्रियायां विशेषणत्वेन यत्र तादृशसंबन्धेन तदुपस्थितेरभावात्संख्यान्वयो न स्यात्, तदनन्वये धावति मृगा इत्यादेरापत्तिश्च स्यात् । अपि तु विशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितिस्तदन्वयबोधे कारणमित्यभ्युपगम्यते । तथा च विशेष्यता संबन्धेन तदुपस्थितेर्मृगे सत्त्वेन न पश्य मृगो धावतीत्यादावेकत्वान्वयानुपपत्तिः, धावतीत्येकवचनोपात्तस्यैकत्वस्य विवक्षितस्य मृगेषु बाधेन न वा धावति मृगा इत्यादेरयोग्यस्य योग्यत्वापत्तिरित्यभिप्रायेण समाधत्ते । तत्र तत्र मुख्येति न वक्तव्यमिति । ननु निरुक्तकार्यकारणभावे विशेष्यतायां मुख्यत्वानिवेशे 'हंसीव धवला' इत्यत्र हंस्यामपि संख्यान्वयप्रसङ्ग इत्युक्तमिदानीं कथमुच्यते तत्र मुख्येति न वक्तव्यमितीतिचेन्न, तत्र हंस्यां संख्यान्वयस्वीकारे इष्टापत्तेः । चैत्र एव पचतीत्यादौ विशेष्यतायां मुख्यत्वनिवेशे व्यभिचाराच्च । तथा च मुख्येति न वक्तव्यमिति समीचीनमेवोक्तमित्यभिप्रायेणाह—चैत्र एव पचतीत्यादौ व्यभिचारादिति । मुख्यविशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितेस्तत्र हेतुत्वस्वीकारे तत्र प्रतिज्ञातव्यभिचारं स्फुटयति—अन्ययोगव्यवच्छेदेत्यादिना । तत्रान्यस्मिन्योगस्तादात्म्यं तस्य व्यवच्छेदोऽत्यन्ताभावः । यत्र यस्य तादात्म्याभावस्तत्र तद्भेद इति नियमेन भेदवन्निष्ठभेद इति प्राप्तम् । तथा च भेद आश्रयो भेदः प्रतियोगितावच्छेदकत्वमेवकारार्थः । यथा 'पार्थ एव धनुर्धरः' इत्यादौ पार्थशब्दोत्तरैवकारार्थो भेद आश्रयो भेदः प्रतियोगितावच्छेदकत्वं, तत्र प्रतियोगितासंबन्धेन पार्थस्य भेदे, विशेषणताविशेषसंबन्धेन भेदस्याश्रये, आधेयतासंबन्धेनाश्रयस्य भेदे, स्वनिरूपितत्वसंबन्धेन भेदस्य प्रतियोगित्वे, स्वरूपसंबन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य विशेषणतावच्छेदके धनुर्धरत्वे, तादात्म्यसंबन्धेन धनुर्धरत्वावच्छिन्नस्य पार्थेऽन्वयः । तथाच प्रतियोगित्वसंसर्गावच्छिन्नपार्थनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नविशेषणताविशेषसंसर्गावछिन्नभेदनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नाधेयतासंसर्गावच्छिन्नाश्रयनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नस्वनिरूपितत्वसंसर्गावच्छिन्नभेदनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नप्रतियोगित्वनिष्ठप्रका-

रतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नस्वरूपसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्व-निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नधनुर्धरत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वाभिन्नतादात्म्यसंसर्गावच्छिन्नधनुर्धरनिष्ठप्रकारतानिरूपितपार्थनिष्ठमुख्यविशेष्यताशाली पार्थान्यनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकधनुर्धरत्वावच्छिन्नाभिन्नः पार्थ इत्यन्वयबोधो निष्पन्नः। एवं चैत्र एव पचतीत्यादावपि चैत्रान्यनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकपाकानुकूलकृतिमानेकश्चैत्र इत्यन्वयबोधो द्रष्टव्यः। इत्थं च चैत्रस्य भेदे विशेषणत्वेनेतराविशेषणनिष्ठविशेष्यतासंबन्धेन प्रथमान्तपदजन्योपस्थितेस्तत्राभावेनैकत्वान्वयबोधोदयात्तत्र व्यभिचारः स्फुट एवेत्येतदभिप्रेत्याह—एवकारार्थैकदेशे इत्यादि। एकदेशे भेदे। प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिविषयत्वाभावात् इतराविशेषणनिष्ठाविशेष्यतासंबन्धेन प्रथमान्तपदजन्योपस्थितेरभावात्। कथं चैत्रस्य भेदे विशेषणत्वमित्यत आह—चैत्रान्यो न पचतीत्यादि। चैत्रान्यनिष्ठभेद—प्रतियोगितावच्छेदक—पाकानुकूलकृति—मानेकश्चैत्र इत्येव चैत्रान्यो न पचति चैत्रः पचतीत्यस्यार्थः, न तु चैत्रान्यः पाकानुकूलकृत्यभाववान्पाकानुकूलकृतिमांश्चैत्र इति, नातो विशेष्यभेदेन वाक्यभेदापत्तिः। तदर्थात् चैत्र एव पचतीत्यस्यार्थात्। मुख्यविशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितेस्तत्र कारणत्वानङ्गीकारे केन संबन्धेन तत्र तस्याः कारणत्वमित्याशङ्क्य मुख्यामुख्यसाधारणविशेष्यतासंबन्धेन तस्याः कारणत्वमित्याह—तथा चेति।

अन्यथा मुख्यविशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितेः कारणत्वाङ्गीकारे। 'हंसीव कृष्ण ते कीर्तिः' इत्यत्रैकत्वाश्रयहंसीनिरूपितसादृश्याश्रयत्वसंबन्धिनी स्वर्गङ्गाकर्मकावगाहनाश्रयत्ववतीत्यन्वयबोधस्तथा च संख्यावगाहनाश्रयत्वयोरुपमानोपमेयसाधारणधर्मत्वेन हंसीव कृष्णेत्यादेः साधुत्वं, हंस्यां संख्यान्वयानङ्गीकारेऽसाधुत्वम्। इत्थं चोपमानोपमेयनिष्ठलिङ्गवचनभेदेऽसत्यपि तद्वाक्यासाधुत्वेन व्यतिरेकव्यभिचाराद्वैरस्यापादकलिङ्गवचनभेदस्योपमानोपमेयनिष्ठस्यालङ्कारिकमते दुष्टतानियामकत्ववर्णनं न स्यादित्याह—इत्याद्युपमान इत्यादि दुष्टत्वं न स्यादित्यन्तेन। उपमाने हंस्यां, संख्यान्वयानङ्गीकारे आख्यातार्थसंख्यान्वयानङ्गीकारे, साधारणधर्मत्वानुपपत्तेरिति अङ्गीकर्तुमुचित इत्यत्र हेतुः।

ननु संख्यायास्तत्साधारणधर्मत्वाभावे को दोष इत्यत आह—हंसीवे-

१ उपमानोपमेयवाचकपदयोर्लिङ्गवचनभेदे असाधुत्वमित्यन्वयतः, भेदाभावे असाधुत्वाभाव इति व्यतिरेकतश्च सहचारो बोध्यः।

त्यादि । असाधुत्वापत्तावित्यतः पूर्वमुपमानोपमेयवाचकपदयोर्लिङ्गवचनैक्येऽपि इति शेषः । तथा च लिङ्गवचनैक्येऽसाधुत्वापादनेन व्यतिरेकव्यभिचारो दर्शितः । दुष्टत्वं दुष्टतानियामकत्वं न स्यादिति । तथा च संख्यायास्तत्साधारणधर्मत्वाभावेऽयमेव दोष इति मुख्यामुख्यसाधारणविशेष्यतासंबन्धेन तस्यास्तत्र कारणत्वमुचितमिति भावः । विशेष्यतायां मुख्यत्वानिवेशे हंस्यामपि संख्यान्वयप्रसङ्गो यो दत्तस्तस्य तत्र मुख्येति न वक्तव्यमित्यर्थाक्षिप्तेष्टापत्त्या वारणं, विशेष्यतायां मुख्यत्वनिवेशे व्यभिचारापादनं, प्रत्युतोपमाने संख्यान्वयानङ्गीकारे दुष्टत्वं न स्यादित्यनिष्टापादनं च कृत्वा मुख्यामुख्यसाधारणविशेष्यतासंबन्धेन तस्यास्तत्कारणत्वं स्थापितम् ।

अधुना तेनैव संबन्धेन तत्कारणत्वे मानान्तरमाह—संख्याकालातिरिक्ताख्यातार्थो हीत्यादिना । भावनान्वयिनि संख्यान्वय इति नियमाच्चेति । कर्तृप्रत्ययस्थले कर्ता भावनान्वयी, कर्मप्रत्ययस्थले कर्म भावनान्वयि, उभयोरप्युभयत्र प्रथमान्तपदोपात्तत्वम्, इति विशेष्यतासंबन्धेनैव तस्यास्तत्कारणत्वं लभ्यते नतु मुख्यविशेष्यतयापि, भावनान्वयिमात्र एव संख्यान्वयाभिधानात् । तथा च पश्य मृगो धावतीत्यादौ मृगादेः कर्मतया दर्शनविशेषणत्वेऽपि विशेष्यतया तदुपस्थितेस्तत्र सत्त्वेन न संख्यान्वयानुपपत्तिरिति भावः ।

यद्वा ननु विशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितेस्तत्र कारणत्वे तण्डुलः पचतीत्यादिलाक्षणिकप्रयोगे तदुपस्थितेस्तेन संबन्धेन तण्डुले सत्त्वेन संख्यान्वयापत्तिरित्यत आह—संख्याकालातिरिक्तेत्यादि । भावनान्वयिनि संख्यान्वय इति मूलस्य, यो वस्तुगत्या भावनान्वयी तन्निष्ठविशेष्यतासंबन्धेन प्रथमान्तपदजन्योपस्थितिः संख्यान्वयबोधे कारणमित्यत्र तात्पर्यम्, तथाच तण्डुले भावनान्वयाभावेन तादृशसंबन्धेन तदुपस्थितेरभावान्न तत्र संख्यान्वयापत्तिरिति भावः । ननु—निरुक्तसंबन्धेन तदुपस्थितेस्तत्र कारणत्वाङ्गीकारे भूतले घटो नास्तीत्यत्र भूतलवृत्तिघटाभावोऽस्तित्वाश्रय इति बोधेऽभावस्य भावनान्वयित्वेनाभावे संख्यान्वयो वक्तव्यस्तथा सति भूतले घटौ नास्तीत्येतस्यापत्तिः, अस्तीत्येकवचनोपातैकत्वस्याभावेऽबाधात् । न चाभावस्य भावनान्वयित्वेऽपि प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्वाभावान्न तत्रैकत्वान्वयापत्तिरिति वाच्यं, नञुत्तरविभक्तेर्लुप्तायाः स्मरणेन तदर्थस्यापि प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्वात्, अन्यथा घटो नास्तीत्यत्राप्य-

भावे एकत्वान्वयानुपपत्तेः। न च तत्र भूतलवृत्त्यभावप्रतियोगिघटोऽस्तीति बोधस्तथाच घटस्य भावनान्वयित्वेन तत्रैव तदुक्तसंख्यान्वय इति भूतले घटौ नास्तीत्यत्र तदुक्तैकत्वस्य भावनान्वयिघटद्वये बाधेनायोग्यत्वमिति वाच्य, क्व इत्यधिकरणाकाङ्क्षापत्तेः—इति चेन्न। नञ्समभिव्याहारस्थले यो भावनान्वय्यभावप्रतियोगी तन्निष्ठविशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितेः संख्यान्वयबोधे कारणत्वं, नञसमभिव्याहारस्थले यो वस्तुगत्या भावनान्वयी तन्निष्ठविशेष्यतासंबन्धेन तदुपस्थितेः संख्यान्वयबोधे कारणत्वम्। एवं च घटो नास्तीत्यत्र घटाभावोऽस्तीति बोधेऽपि भावनान्वय्यभावप्रतियोगिनि घटे एकत्वान्वयसंभवेन योग्यत्वं, घटौ नास्तीत्यत्र तादृशे घटद्वये एकत्वान्वयासंभवेनायोग्यत्वं, घटौ न स्त इत्यत्र तादृशे घटद्वये स्त इति द्विवचनोपात्तद्वित्वान्वयसंभवेन योग्यत्वमिति निरुक्तदोषाभावात्।

यद्वा भूतले घटो नास्तीत्यत्र निरूपितत्वं सप्तम्यर्थो विद्यमानत्वमसधातोरर्थ आश्रयत्वमाख्यातार्थः। तथा च भूतलनिरूपितविद्यमानत्वाश्रयत्वाभाववानेको घट इति बोधे आख्यातोपस्थाप्यैकत्वस्य घटेऽन्वयेन तद्वाक्यस्य योग्यत्वं, घटौ नास्तीत्यत्र विद्यमानत्वाश्रयत्वाभाववति घटद्वयेऽस्तीत्येकवचनोपात्तैकत्वस्य बाधेनायोग्यत्वम्। न चाख्यातार्थस्य निषेधेऽन्वयो न दृष्टचर इति वाच्यम्। न पचति चैत्र इत्यादावेव निषेधे आख्यातार्थकृतेरन्वयस्य दृष्टत्वात्। ननु तत्र घटस्य भावनान्वयित्वाभावेन भावनान्वय्यभावप्रतियोगित्वाभावेन च कथमाख्यातोपस्थाप्यसंख्यान्वय इति चेन्न। यः साक्षात्परंपरासाधारणभावनाविशेष्यस्तन्निष्ठविशेष्यतासंबन्धेन प्रथमान्तजन्योपस्थितेराख्यातार्थसंख्यान्वयबोधे कारणत्वस्वीकारेण तत्र घटस्य साक्षाद्भावनाविशेष्यत्वाभावेऽपि स्वाश्रयाश्रयत्वसंबन्धेन भावनाविशेष्यत्वात्तत्र संख्यान्वयानुपपत्तेरभावात्। न चैवमपि द्वित्ववद्घटत्वावच्छेदेन भूतलनिरूपितवर्तमानत्वाश्रयत्वाभावस्यान्वये एकघटवति भूतले घटौ न स्त इति न स्यात्, घटवृत्तिद्वित्वसामानाधिकरण्येन तादृशनञर्थान्वये तु घटद्वयवत्यपि घटौ न स्त इति स्यादधिकरणान्तरीयघटे भूतलास्तित्वाभावादिति वाच्यम्, घटवृत्तिद्वित्वत्वावच्छेदेन नञर्थस्य सामानाधिकरण्यान्वयात्। अधिकरणान्तरीयद्वित्वे नञर्थसामानाधिकरण्येऽप्ये-

१ भूतलवृत्त्यभावप्रतियोगिघटोस्तीतिवाक्यार्थबोधाङ्गीकारे इति शेषः।

तद्भूतलवृत्तिघटवृत्तिद्वित्वे भूतलास्तित्वाभावसामानाधिकरण्याभावान्न घटद्वयवति घटौ न स्त इत्यापत्तिरिति ।

ननु भूतले घटो नास्तीत्यत्रानुयोगिवृत्तित्वाभावस्य प्रतियोगिन्यन्वयस्वीकारे जातौ सत्ता नास्तीत्यत्र जातिनिरूपितवृत्तित्वाश्रयत्वाभाववती सत्तेति तदन्वयबोधो वक्तव्यः । स च न संभवति । जातिनिरूपितैकार्थसमवायावच्छिन्नवृत्तित्वस्य सत्तायां सत्त्वेन तदभावबोधनासंभवाज्जातिसमवेतत्वस्य चाप्रसिद्धया निषेद्धुमशक्यत्वादिति चेन्न । भूतले घटो नास्तीत्यत्र 'भूतलवृत्तिघटाभावोऽस्तित्वाश्रयः' इतिबोधस्वीकर्तृनये जातौ न सत्तेत्यत्र जातिवृत्तिसत्ताभाव इत्युपपत्तावपि जातिर्न सत्तावृत्तिरित्यत्र संबन्धसामान्यावच्छिन्नसत्तावृत्तित्वाभावस्य जातावसंभवेन समवायसंबन्धावच्छिन्नसत्तावृत्तित्वस्य चाप्रसिद्धया निषेधासंभवेन तत्पूर्वपक्षस्य तुल्यत्वात् ।

ननु जातिर्न सत्तावृत्तिरिति वाक्यमयोग्यमेव, वृत्तिपदं वा साक्षात्संबन्धावच्छिन्नवृत्तिपरम् । तथा च तत्र सत्तानिरूपितसाक्षात्संबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभावः प्रतीयते । सत्तानिरूपितसाक्षात्संबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वं च स्वरूपसंबन्धमादाय प्रमेयत्वादौ प्रसिद्धमिति नोक्तदोष इति चेन्न । जातौ सत्ता नास्तीत्यपि वाक्यमयोग्यमेवेत्यस्यासधातोः साक्षात्संबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वे लक्षणास्वीकारेण तत्र जातिनिरूपितसाक्षात्संबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाश्रयत्वाभाववती सत्तेति बोध इत्यस्य वाऽनुयोगिवृत्तित्वाभावस्य प्रतियोगिन्यन्वय इति स्वीकर्त्रा मयापि वक्तुं शक्यत्वादिति दिक् ।

क्रियाया विशेष्यत्वे 'प्रयाति पुरुषस्तस्य चरणावभिवादये' इत्यादौ तच्छब्देन पुरुषपरामर्शो न स्यादित्याशङ्क्य 'पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफावहा' इत्यादि प्रयोगदर्शनात्तच्छब्देन विशेषणस्यापि परामर्श इति यत्समाहितं तदयुक्तम् । तत्र तच्छब्देन विशेषणस्यापि परामर्श इति तु सत्यम् । परंतु यावत्कालं तच्छब्दस्य प्रधानपरामर्शित्वं तावत्कालं विशेषणपरामर्शित्वं नोचितमिति 'प्रयाति पुरुषः' इत्यादौ प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकबोधस्वीकारे तस्येतितच्छब्देन प्रधानीभूतस्यैव परामर्श इति तथैव स्वीकारादित्यभिप्रेत्याह—कचिद्विशेष्यस्य कचिद्विशेषणस्य परामर्शादित्यादि । कचित्प्रयाति पुरुष इत्यादौ विशेष्यस्य । कचिद्विशेषणस्य 'पटोलपत्रं पित्तघ्नम्' इत्यादौ ।

ननु तच्छब्दस्य विशेषणपरामर्शित्वे घटोऽयं तज्जातिरित्यादौ तच्छब्देन घटत्वपरामर्शः स्यादित्यत आह—परं त्विति। पदार्थतावच्छेदकरूपविशेषणस्य पदशक्यतावच्छेदकरूपविशेषणस्य। नातः पटोलपत्रमित्यादौ पटोलादिपदस्य पटोलादिसंबन्धिनि लक्षणास्वीकारे पटोलादेः पदार्थतावच्छेदकत्वेऽपि तत्परामर्शानुपपत्तिरिति भावः ॥

स्वविलक्षणत्वव्यापकाविद्यातत्प्रयुक्तदृश्याश्रयकालपूर्वे-
त्वाभावकशुद्धचिज्ज्ञाननिरस्तविपरीतभावनी-
भूतश्रीमदुदयसिंहप्रभुवर्यलब्धजीवकहरि-
यशोमिश्रनिर्मिता वाक्यदीपिका
समाप्तिमगमत्।

वाक्यवादे[1] पाठान्तराणि ।

पृ०	पङ्क्तिः	मूलपाठः	पाठान्तरम्
१	१२	स्योच्छेदः स्यात् ।	स्योच्छेदापत्तेः ।
१	१६	न च हरेर्द.	ननु हरेर्द.
१	२२	लडर्थविवक्षेति	लडर्थवर्तमानविवक्षेति
२	२	पश्यति इत्यादि	पचतीत्यादौ
२	१०	क्रियाविशेष्यत्वे	क्रियाया विशेष्यत्वे
२	१८	न च धावनविशिष्ट	न च तत्र धावनकृतिविशिष्टे
२	२४	सुबन्तस्य	तिङन्तस्य
२	२९	वाक्योदाहरणस्य	वाक्यस्य
२	३१	अगतेश्च	अभ्यासेश्च
३	९	कफापहा	कफावहा
३	१६	निराकर्तुं न	कर्तुं
३	२०	सुबन्तस्य	तिङन्तस्य
३	२६	कारणाभावात्	कार्यकारणभावात्
३	२९	धातुष्विति ।	तिङन्तेष्विति ।
३	३०	मितितदर्थात् ।	मस्तीति तदर्थात् ।
४	३	मात्रं	मत्र
४	२३–२९	कर्मकर्त्वं	कर्मत्वं
४	२७	सुब्विभक्तौ	विभक्तौ
४	२९	लक्षणा	लक्षणापि
४	३०	' निर्ध्वानमभूयत पाञ्चजन्यः '	' प्रवृद्धमन्द्राम्बुदनादधीरं कृष्णार्णवाभ्यर्णचरैकहंसः । मन्दानिलापूरकृतं दधानो निर्ध्वानमभूयत पाञ्चजन्यः ॥ '
६	७–८	एवमित्यादि तेनेत्यर्थः इत्यन्तं नास्ति ।	

१ सटीकवाक्यवादपुस्तकस्य वाक्यवादमुद्रणोत्तरमुपलम्भात्तत्र दृष्टाः पाठभेदा अत्र परिशिष्टतया दर्शिताः । तेषु ये टीकाकृता धृताः ये च युक्तास्ते सुधीभिरवगन्तुं शक्यत्वान्न पृथक्कृताः । वाक्यवादस्य कर्ता ' अचलोपाध्यायः ' इत्येकस्माल्लिखितपुस्तकसूचीपत्रादवगम्यते ।

पृ०	पङ्क्तिः	मूलपाठः	पाठान्तरम्
६	१०	वच्छेदकरूपैवकारार्थैक-देशेऽन्वये	वच्छेदरूपैवकारार्थैकदेशे
६	१७	हंस्य इव'''मपि	हंसीव'''मप्य
६	१९	ख्यातार्थे हि	ख्यातार्थो हि भावना,
६	१९	नियमात् ।	नियमाच्च ।
६	२१	ब्दस्य नियतम् ।	ब्दस्येति मतम् ।

शुद्धिपत्रम् ।

स्फोटचन्द्रिकायाम्–

पृ०	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
६	८	कारणताच्छेदक	कारणतावच्छेदक
७	१३	वर्णानुभजन्य	वर्णानुभवजन्य
८	१८	द्रव्यवाच्छिन्न	द्रव्यावच्छिन्न
८	३१	जगदाधारकत्वं	जगदाधारत्वं
१४	१४	कृता	कृताः
१४	१६	कलायता	कलयता

प्रातिपदिकसंज्ञावादे–

पृ०	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२	१४	चोषधेश्च	चौषधेश्च
७	६	अतिङ्	अतिप्
८	११	ससंज्ञ (?) आदरणाय	सर्वत्रादरणीयः
१०	२९	तस्याप्रतिबन्ध	तस्या अप्रतिबन्ध

वाक्यवादे–

पृ०	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	७	विशेष्यकत्वं	विशेष्यत्वं

'गुजराती' मुद्रणालयस्थानि क्रय्यसंस्कृतपुस्तकानि।

श्रीमद्भगवद्गीता

Bhagavat-Geeta with 7 commentaries

१ प्रथमो गुच्छः—आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशांकरभाष्य—जयतीर्थविरचितटीकासंवलितानन्दतीर्थीय (माध्व) भाष्य—रामानुजभाष्य—पुरुषोत्तमजीप्रकाशितामृततरङ्गिणी—नीलकण्ठीसमेता। मञ्जुलैरायसाक्षरैर्मुद्रिता। पृष्ठान्यष्टशतपरिमितानि सुचिक्कणानि। मूल्यम् रू. ६–०–०.

श्रीमद्भगवद्गीता

Bhagavat-Geeta with 8 other commentaries 1st part

२ द्वितीयो गुच्छः। प्रथमषट्कम्—निम्बार्कमतानुयायिश्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यपादप्रणीता—'तत्त्वप्रकाशिका' श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृता—'गूढार्थदीपिका' श्रीशङ्करानन्दप्रणीता—'तात्पर्यबोधिनी' श्रीधरस्वामिकृता—'सुबोधिनी' श्रीसदानन्दविरचितः—'भावप्रकाशः' श्रीधनपतिसूरिविरचिता—'भाष्योत्कर्षदीपिका' दैवज्ञपण्डितश्रीसूर्यविरचिता—'परमार्थप्रपा' पूर्णप्रज्ञमतानुसारिश्रीराघवेन्द्रकृतः—'अर्थसंग्रहः' इत्येताभिर्व्याख्याभिः सहितायाः श्रीमद्भगवद्गीतायाः प्रथमादिषडध्यायात्मकं प्रथमं खण्डम्। अत्र श्लोकाः स्थूलतमाक्षरैष्टीकाश्च स्थूलाक्षरैर्मुद्रिताः, दृष्टा मा क्लेशिषतेति। पत्रसंख्या सार्धपञ्चशतानि। मूल्यम् रू. ३–१२–०.

द्वितीयो गुच्छः। द्वितीयं षट्कम्। षष्ठादिद्वादशाध्यायान्तम्। तत्त्वप्रकाशिकाद्यष्टटीकोपेतम्। मूल्यम् रु. २–१२–०

Uttara-Geeta with a commentary

३ उत्तरगीता—गौडपादीयदीपिकाख्यव्याख्यायुता। भगवत्पादश्रीशंकराचार्याणां परमगुरुभिः श्रीशुकाचार्याणां च शिष्यैः श्रीगौडपादाचार्यैः प्रणीतेयं व्याख्येत्येतावत्कथनमलमस्या महिमानमवगमयितुम्। मू. रू. ०–३–०.

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

Valmiki Ramayana with 3 well-known commentaries 1st part

४ बालकाण्डम्—सर्वतन्त्रस्वतन्त्रप्रतिभेन शब्देन्दुशेखरादिनानानिबन्धप्रणेत्रा श्रीमन्नागेशभट्टेन स्वशिष्यस्य सतो जीविकाप्रदातुः शृङ्गवेरपुराधीशस्य वीरमणेः श्रीरामराजस्य नाम्ना प्रणीतया रामायणतिलकाख्यया टीकया, पण्डित-

श्रीवंशीधर—शिवसहायाभ्यां प्रणीतया रामायणशिरोमण्याख्यया टीकया, श्रीगोविन्दराजप्रणीतया भूषणाख्यया टीकया च सह मुद्रयितुमारब्धमस्माभिः श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्। तच्च षड्भिः खण्डैः समापयिष्यामः। तत्रेदं प्रथमं खण्डम्। मूल्यम् रू. ३-०-०.

Stotra-muktahar containing 256 Stotras

५ स्तोत्रमुक्ताहारः—अस्मिन् २५६ स्तोत्राणि संगृहीतानि। यद्यपि सन्ति भूरीणि स्तोत्रपुस्तकानि मुद्रितानि भूरिभिस्तथापि न तेष्वियतां स्तोत्ररत्नानां संग्रहः। अस्माभिः पूर्वमुद्रितानां स्तोत्राणां पुस्तकानि काश्यादिक्षेत्रेभ्यो भूयसा प्रयासेन द्रविणव्ययेन च समासाद्य तेभ्यश्च प्रसादगुणयुक्तानि स्तोत्राणि संकलय्य संशोध्य च तानि भाविकजनानां कृतेऽत्र समावेशितानि तदाशास्महे श्रद्धावन्तो जनाः सफलयिष्यन्ति प्रयत्नमस्माकममुमिति। मूल्यम् रू.०-८-०.

Samskar Mayukha

६ संस्कारमयूखः—मीमांसकनीलकण्ठभट्टसुतशंकरभट्टकृतः। अत्र संस्काराणां स्वरूपं कालः इतिकर्तव्यता वर्णधर्मा आश्रमधर्माश्च विस्तरतो मूलवचनोपन्यासपुरःसरं निरूपिताः। मूलवचनानि चाप्रतिपत्तिविप्रतिपत्तिसंभवानास्थलेषु क्रमेण पर्यायशब्दप्रदर्शनेन मीमांसकाभिमतन्यायानुसरणेन च व्याख्यातानि। अन्ते कातीयसूत्रानुसारिप्रयोगाश्च दत्ताः। पूर्वं वाराणस्यादिषु मुद्रितोऽप्ययं वर्णपदवाक्यभ्रंशविपर्ययादिदोषप्रचुरतयाऽप्रविभक्तविषयतया च भृशं दुर्बोधो विपरीतबोधकरश्चासीत्। अस्माभिस्तु ग्रन्थकृतैव पुनः शोधितस्य वर्धितस्य चास्य ग्रन्थस्य पुस्तकमासाद्य विषयांश्च प्रविभज्य शोधने च महान्तमायासमास्थाय मुद्रितः। मू. रू. ०-१२-०

Manu Smriti

७ मनुस्मृतिः—कुल्लूकभट्टकृतटीकया, ग्रन्थान्तरेषु मनुनाम्नोल्लिखितैरिदानींतनमनुस्मृतिपुस्तकेष्वनुपलभ्यमानैः श्लोकैः, पद्यानां वर्णानुक्रमकोशेन, विषयानुक्रमेण च सहिता। सूक्ष्मेक्षिकया संशोधिता च। मू. रू. १-८-०

Vidura-Niti with a commentary

८ विदुरनीतिः—संस्कृतटीकोपेता नीतिशास्त्राभ्यासिनां विद्यार्थिनामतीवोपयोगिनी। मू. रू. ०-४-०.

Vedanta Rahasya

९ वेदान्तरहस्यम्—वेदान्तवागीशभट्टाचार्यविरचितम्। अत्राद्वैतमतसिद्धान्तो निरूपितः। उपपत्तिश्च प्रदर्शिता। भाषाऽतिसरला प्रौढा च। मूल्यम् रू. ०-१-०.

Vishishtadvaita-Mata-Vijaya-Vada

१० विशिष्टाद्वैतमतविजयवादः—नरहरिपण्डितकृतः। अत्र वि-

शिष्टाद्वैतमते परेषामाक्षेपान्निराकृत्य विशिष्टाद्वैत एवोपनिषदां तात्पर्यं व्यवस्थापितम् । मूल्यम् रू. ०–१–०.

Kumar Sambhav with 3 known commentaries

११ कुमारसंभवं महाकाव्यम्—कविवरश्रीकालिदासविरचितमिदं सप्तमसर्गपर्यन्तं मल्लिनाथकृतसंजीविन्या चारित्र्यवर्धनकृतशिशुहितैषिण्या च संवलितं तत आसमाप्ति सीतारामकृतसंजीविन्यालंकृतं सुललितैरायसाक्षरैर्मुद्रितमतीव दर्शनीयमस्ति । मूल्यम् रू. १–४–०.

Raghuvamsha with a commentary by Mallinatha

१२ रघुवंशमहाकाव्यम्-श्रीकालिदासकृतम् । मल्लिनाथकृतसंजीविन्याख्यटीकासहितम् । मू. रू.०-१०-०

कारिकावली

Karikavalee with Siddhanta=Muktavali and other notes

१३ सिद्धान्तमुक्तावलीसहिता—न्यायवैशेषिकदर्शनयोर्व्युत्पित्सूनां कृते प्रणीतेषु प्रकरणग्रन्थेषु सिद्धान्तमुक्तावलीसमुद्भासिता कारिकावली मूर्धाभिषिक्तेत्यत्र न विदुषां वैमत्यं किंतु तत्र दीधितिकृदुपसृतया विवेकसरण्या संक्षेपतः सूक्ष्मतमानामर्थानामुपनिबद्धतया प्रायः खिद्यन्ति नव्यास्छात्राः, इति तेषामुपकारायास्माभिः प्रायः सर्वेषु विषमस्थलेष्वतिविस्तृतां सरलां सुबोधां च टिप्पनीं पण्डित–जीवरामशास्त्रिभिः कारयित्वा तया सहेयं दृढतरेषु सुचिक्कणेषु पत्रेषु स्थूलाक्षरैर्मुद्रिता । सार्धशताभ्यधिकपत्रयुतामपीमां सर्वसौलभ्यायाल्पीयसा मूल्येन वितरामः । मूल्यम् रू. ०–७–०.

Vaisheshika Darshana with several commentaries

१४ वैशेषिकदर्शनम्—श्रीशंकरमिश्रकृत–वैशेषिकसूत्रोपस्कार–जयनारायणतर्कपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीत–विवृति–चन्द्रकान्तभट्टाचार्यप्रणीत–भाष्यसहितम् । मू. रू. २–०–०.

Vadartha Samgraha

१५ वादार्थसंग्रहः (प्रथमो भागः)—अत्र शेषकृष्णकृतं स्फोटतत्त्वनिरूपणं, श्रीकृष्णमौनिकृता स्फोटचन्द्रिका, गोडबोलेकृतः प्रातिपदिकसंज्ञावादः, वाक्यवादः, हरियशोमिश्रकृता वाक्यदीपिकेति पञ्च ग्रन्थाः संकलिताः । पण्डितानां प्रौढच्छात्राणां च बहुतरमुपकारकः । मू. रू. ०–६–०

Chandrakanta

चन्द्रकान्त (वेदान्त ज्ञानका मुखग्रन्थ.) प्रथम भाग. यह वह ग्रन्थ है कि, जो नितान्त निर्भ्रान्त वेदान्त सिद्धान्तका एकांत प्रतिपादक "चन्द्रकान्त" मणि बम्बई प्रान्तके प्रसिद्ध साप्ताहिक 'गुजराथी' पत्रके मुख्य संपादक गुजराती भाषाके सुविख्यात लेखक, अनेक ग्रन्थोंके निर्माता देशभक्तधुरीण, सारासारविवेक–प्रवीण, वैश्यकुलभूषण श्रीमान् शेठ इच्छाराम सूर्यराम देसाईके शुद्ध हृदयमें देदिप्यमान प्रबोधरत्न–भाण्डागारका चमचमाता हुआ एक अमूल्य रत्न है. किं. रु. २–८.

आरब्धमुद्रणा ग्रन्थाः ।

Taittiriya-Upanishat

१६ तैत्तिरीयोपनिषत्–श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतभाष्येणानन्दगिरिकृतटीकायुतेन तैत्तिरीयविद्याप्रकाशेन च सहिता ।

Mimansa Nyaya Bindu

१७ मीमांसान्यायबिन्दुः––वैद्यनाथकृतः पूर्वमीमांसाग्रन्थः ।

Laghu Shabdendushekhar

१८ लघुशब्देन्दुशेखरः––परिष्कारटिप्पनीयुतः ।

Prayashchittendushekhar

१९ प्रायश्चित्तेन्दुशेखरः––नागेशभट्टकृतः ।

Maha Bhagavata

२० महाभागवतम्––देवीपुराणम् ।

'गुजराती' मुद्रणालयाधिपतिः ।

कोट सासून बिल्डिंग–मुंबई.